प्रवचन

परमहंस श्री हंसानंद जी सरस्वती दण्डी स्वामी जी

विषय तालिका

CD # 59 – A * May 2013 *

SN	Title	Min	Coding	Contents	
1	01 May	30		**पाँच माताओं का वर्णन**	1
2	02 May	38		सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही था और दूसरा कोई नहीं था फिर पुरुष में छाया की भाँति या रज्जु में सर्प की भाँति माया का प्रादुर्भाव हुआ **सृष्टि क्रम** = ब्रह्म → अव्यक्त/प्रकृति/माया → महत् तत्त्व/समष्टि बुद्धि → अहंकार/ समष्टि मन → पंचतन्मात्रायें → पंचमहाभूत → अखिलं जगत ///// अव्यक्त नाम की परमात्मा की त्रिगुणात्मक अनादि शक्ति है जिसे प्रकृति माया परा भी कहते हैं, जो अद्भुत् काम करने वाली है व बिलकुल झूठी है तो मायाकृत् संसार भी झूठा है जैसे दर्पण में हमारा प्रतिबिम्ब कौशल्या अम्बा, यशोदा अम्बा एवं अर्जुन को अपना विराट रूप, चतुर्भुज रूप एवं प्रलय लीला दर्शन **'निज इच्छा निर्मित तनु माया गुण गो पार'** – भगवान अपनी माया से इच्छानुसार विश्व-विराट रूप धारण कर लेते है तथा माया, माया के गुणों व इन्द्रियों से परे हैं। जो भी दिखाई पड़ रहा है ये माया ही है। स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत भगवान की माया से एक क्षण में ही बन जाते हैं व इन शरीरों के भीतर बैठकर देखने वाले स्वयं भगवान ही हैं। हमारा तुम्हारा स्वरूप भी वही है क्योंकि दूसरा द्रष्टा नहीं है। हमारा स्वरूप स्त्री-पुरुष-नपुंसक नहीं है बल्कि जीवात्मा है जो सबमें व्यापक, सबमें बैठकर देख रहा है। भगवान कहते हैं कि मैं माया से सब शरीर बना देता हूँ और इनमें बैठकर मैं ही देख रहा हूँ अतः अपने शरीरों को मेरी छाया जानो और अपने आप को मेरा स्वरूप जानो। हमारा तुम्हारा स्वरूप द्रष्टा-साक्षी आत्मा, भगवान कहते हैं मैं ही हूँ। शरीर को ज्ञान नहीं है इन्हें छाया समझो व इनमें प्रकट ज्ञान तत्त्व भगवान हैं। मैं और मेरी माया, देखने वाला मैं व दिखाई पड़ने वाली मेरी माया है अतः दृश्यमान शरीर मेरी माया है और देखने वाले भगवान हैं। माया आती-जाता रहती है मैं सदा रहता हूँ, जीवात्मा के रूप में मैं ही हूँ।	
3	03 May	29		**पाँच माताओं का वर्णन**	2
4	04 May	40		**तैत्रीय उप० के अनुसार सृष्टिक्रम ::–** परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से → आकाश → वायु → अग्नि → जल → पृथ्वी → औषधियाँ → अन्न → भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं फिर विपरीत दिशा में ये लय हो जाते हैं और अंत में आत्मा/परमात्मा ही शेष रहते हैं। आत्मा/परमात्मा अनादि अनंत है उसकी न उत्पत्ति होती है न मृत्यु ।। **ब्रह्मोपनिषद के अनुसार सृष्टिक्रम ::–** परम्ब्रह्म परमात्मा से रज्जु में सर्प की तरह, पुरुष में छाया की तरह माया का प्रादुर्भाव हुआ। छाया स्वयं ही उत्पन्न होती है व पुरुष के आश्रित रहती है, भगवान सत्य ज्ञान आनंद से पूर्ण है इसलिये उन्हें पुरुष कहते हैं उन्हीं भगवान से छाया के समान माया अपने आप ही प्रकट हुई, इसका नाम त्रिगुणात्मिका, अव्यक्त, शक्ति, अविद्या, अज्ञान और परा भी है, ये असंभव को संभव करके दिखा देती है व बिना सामग्री के क्षणमात्र में अनंत कोटि ब्रह्माण्ड बना देती है इसलिये इसका नाम माया भी है /// परमात्मा→अव्यक्त→महत्तत्व/स०बुद्धि→अहंतत्व/स०मन/अहंकार→पंचतन्मात्रायें (शब्द स्पर्श रूप रस गंध)→ पंचमहाभूत (आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी)→ अखिलं जगत /// जो सदा चलता ही रहता है उसे जगत कहते है जैसे देह-इ०-म०-बु०-प्राण । इन सबकी उत्पत्ति स्वयं ही हो रही है अर्थात् स्वभाव से ही सब हो रहा है, भगवान में कर्तृत्व, कर्म, कर्मफल कुछ भी नहीं है। एक अपने शरीर से ही सारे संसार का ज्ञान हो जाता है व सब शरीरों में एक ही आत्मा है। **हमारे ३ शरीर हैं :–** पंचतत्वों के पंचीकरण से **२५** तत्वों का **स्थूल शरीर**, अपंचीकृत् पंचतत्वों से **१६** तत्वों का **सूक्ष्म शरीर** तथा अपने स्वरूप के अज्ञानरूप **कारण शरीर** है ← स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का सविस्तार वर्णन → सारी सृष्टि अन्न से उत्पन्न होती है इसलिये स्थूल देह को अन्नमय कोष भी कहते हैं ।। अन्न से सप्त धातुओं की उत्पत्ति ।। **अंतःकरण** = मन वायु से, बुद्धि अग्नि से, चित्त जल से व अहंकार पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं । अहंकार भी २ प्रकार का होता है, **मैं देह हूँ** – ये **अशुद्ध** अहंकार है और वह जो ब्रह्म है **मैं वह ब्रह्म हूँ** – ये **शुद्ध** अहंकार है। ये मुक्ति कराने वाला है, जन्म-मृत्यु से छुड़ाने वाला है। आत्मा का जन्म-मरण नहीं है अतः ज्ञानकाल में शुद्ध अहं होता है। कारण शरीर अज्ञान-गाढ़ निद्रा रूप है, अपने स्वरूप को न जानना ही कारण शरीर है। ये तीनों शरीर हमारे हैं हम ये शरीर नहीं हैं पर हम इन तीनों को जानते हैं, ये माया से उत्पन्न हुए हैं। हमारा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है हम द्रष्टा-साक्षी हैं हमारी उत्पत्ति नहीं होती। हम ज्ञानवान हैं पर इन शरीरों को ज्ञान नहीं है।	
5	05 May	32		**पाँच माताओं का वर्णन**	3
6	06 May	43		**ब्रह्मोपनिषद के अनुसार सृष्टिक्रम ::–** परम्ब्रह्म परमात्मा से रज्जु में सर्प की तरह, पुरुष में छाया की तरह माया का प्रादुर्भाव हुआ। छाया स्वयं ही उत्पन्न होती है व पुरुष के आश्रित रहती है, भगवान सत्य ज्ञान आनंद से पूर्ण है इसलिये उन्हें पुरुष कहते हैं उन्हीं भगवान से छाया के समान माया अपने आप ही प्रकट हुई, इसका नाम त्रिगुणात्मिका, अव्यक्त, शक्ति, अविद्या, अज्ञान और परा भी है, ये असंभव को संभव करके दिखा देती है व बिना सामग्री के क्षणमात्र में अनंत कोटि ब्रह्माण्ड बना देती है इसलिये इसका नाम माया भी है। /// **सीताजी का स्वरूप निरूपण** /// जो चीज़ बिना सामग्री के उत्पन्न होती है वह झूठी होती है – इन्द्रजालवत्, देवता और असुर लोग अपनी माया से बहुत रूप बना लेते हैं। ये संसार भगवान ने अपनी माया शक्ति से अतः ये भी झूठा है, ये छाया के समान स्वयं ही प्रकट हो जाती है। सीता ने स्वयं को राम की छाया ही बताया है। छाया पुरुष से उत्पन्न होती है पुरुष के आश्रित रहती है और फिर पुरुष में ही लीन हो जाती है। हे राम ! आप सत्य ज्ञान आनंद से पूर्ण पुरुष हैं व मैं आपकी छाया हूँ तथा आप से ही प्रकट हुई हूँ अतः मैं किस प्रकार आपसे अलग रह सकती हूँ, मैं असत् हूँ पर आप सत् में मिलकर मैं भी सत् हो जाउँगी /// परमात्मा → अव्यक्त → महत्तत्व/स०बुद्धि → अहंतत्व / स०मन / अहंकार → पंचतन्मात्रायें (शब्द स्पर्श रूप रस गंध) → पंचमहाभूत (आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी) → अखिलं जगत /// **हमारे ३ शरीर हैं :–** पंचतत्वों के पंचीकरण से **२५** तत्वों का **स्थूल शरीर**, अपंचीकृत् पंचतत्वों से **१६** तत्वों का **सूक्ष्म शरीर** तथा अपने स्वरूप को न जानना कि मैं सच्चिदानंद ब्रह्म परमात्मा हूँ ये अज्ञानरूप **कारण शरीर** है, सुषुप्ति अज्ञान अंधकार रूप है ← स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर व पंचकोष का सविस्तार वर्णन → तीन शरीर कहो, तीन अवस्थायें कहो अथवा पाँचकोष कहो सब एक ही बात है। इस प्रकार माया से ये ३नों देह, ३ अवस्थायें या ५ कोष बन गये और जब **विपरीत क्रम से इनका लय** होगाा तो शरीर → पंचभूत → पंचतन्मात्रायें → अहंतत्व → महत् तत्व → अव्यक्त या महामाया शक्ति में लय हो जायेंगे – माया तो छाया रूप है, वह ब्रह्म रूपी पुरुष से एक क्षण भी अलग नहीं रह सकती अतः ये महामाया शक्ति पुरुष में लीन हो जायेगी जो पूर्ण है, फिर ये झूठी चीज़ भी सत्य हो गयी । असत् की निवृत्ति सदा सत् में हुआ करती है अतः माया से लेकर जितना ये प्रपंच भया है ये सब झूठा है इसे सीताजी ने माया से बिना सामग्री के ही से बना दिया है व फिर ब्रह्म में समा गयीं।।	
7	07 May	27		**पाँच माताओं का वर्णन**	4
8	08 May	47		**सामवेद :: छा०उ० :: ७तवाँ अ०** नारद-सनतकुमार सम्वाद – नारदजी द्वारा अपनी विद्याओं का वर्णन :– १ चारों वेद जिनमें एक लाख श्लोक हैं (व्यासजी ने चारों वेद का ही विस्तार एक लाख श्लोक वाली महाभारत व अट्ठारह पुराण में किया है) चारों वेदों में कर्मकाण्ड के ८० हज़ार, भक्तिकाण्ड के १६ हज़ार, ज्ञानकाण्ड के ४ हज़ार श्लोक हैं। अपने वर्णाश्रमपदाधिकार के	

						अनुसार सकाम-कर्म से संसार तथा निष्काम-कर्म से भगवान मिलते है - भगवान की आज्ञा से फलासक्ति त्यागकर किये गये कर्म निष्काम-कर्म कह लाते है जिनसे चित्तशुद्धि होती है और जीव ज्ञान का अधिकारी होकर गुरु के अनुग्रह से वह ज्ञान प्राप्त करता है और मुक्त हो जाता है २ इहिास-महाभारत ३ अट्ठारह पुराण ४ व्याकरण (वेद के छः अंग हैं - शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छंद ज्योतिष, इनमें व्याकरण वेदों का मुखरूप है) ५ पितृं ६ राशिं-गणित ७ देवं-उत्पात् ज्ञान ८ निधिं-भूगर्भ ज्ञान ९ वाकोवाक्यं-तर्कशास्त्र १० एकायनं-नीतिशास्त्र ११ ब्रह्मविद्या १२ देवविद्या-यज्ञादि १३ भूतविद्या १४ क्षत्रविद्या-धनुर्विद्या १५ नक्षत्रविद्या-ज्योतिष १६ सर्पविद्या-गारुड़ी १७ देवजन विद्या-संगीत इति । हे भगवन ! मैं केवल मंत्रों का ही ज्ञाता हूँ, मैं आत्मा को नहीं जानता। मैंने तत्त्व दर्शियों से सुना है कि जो अपनी आत्मा को जानता है वह शोक-सागर से तर जाता है अतः आप आत्म/ब्रह्मज्ञान देकर मुझे शोक-सागर से पार करें। तब सनतकुमार बोले :- जो **भूमा** तत्त्व है वही सुखरूप है, अल्प में सुख नहीं है। भूमा नाम महान का है। दुःख निवृत्ति और नित्य शान्ति प्राप्त करने के लिये भूमा को ही जानना चाहिये। इ०म०बु०वाणी जहाँ नहीं पहुँच सकते अर्थात् जो इ०म०बु० से नहीं जाना जा सकता पर जो इ०म०बु० को जानता है वह भूमा तत्त्व है और जहाँ इ०म०बु० पहुँचते हैं वह बहुत **अल्प** है। जो अल्प है वह मरता है तथा भूमा अमृत है जो कभी नहीं मरता, वही अमृत तत्त्व तुम्हारा स्वरूप है, वही सबका आधार-अधिष्ठान है, उसी में सारा विश्व स्थित है वही हम सब जीवों का स्वरूप - परम् प्रकाश रूप **'सत्-चित्-आनंद ब्रह्म'** है। हे नारद ! जो भूमा है वही हमारा तुम्हारा आत्मा भी है। हमारा **'आत्मा ही ब्रह्म है-ब्रह्म ही आत्मा है'** //
9	09 May	33				**सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही थे** उनसे पुरुष में छाया की भाँति एक माया का प्रादुर्भाव हुआ। छाया अपने आप ही प्रकट हो जाती है और पुरुष के आश्रित रहती है। पुरुष छाया को देखता है, छाया को कुछ भी ज्ञान नहीं फिर छाया पुरुष में समा जाती है छाया तो झूठी है। इसी प्रकार से भगवान पुरुष है व माया छाया है जो भगवान से प्रकट होती है भगवान में रहती है व भगवान में समा जाती है फिर एक भगवान ही शेष रह जाते हैं। छाया पकड़ी नहीं जा सकती पर पुरुष-रूप भगवान को पकड़ने से छाया-रूप माया पकड़ी जाती है। माया ही प्रकृति सीता लक्ष्मी है, इसी का नाम अव्यक्त त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या है क्योंकि ये अद्भुत् काम करती है - क्षण मात्र में अनंत कोटि ब्रह्माण्ड बना देती है इसीलिये माया कहलाती है। हमारे नेत्रों की देखने की क्षमता सीमित है, बहुत निकट और बहुत दूर की वस्तुऐ हम नहीं देख पाते। अपना मुख देखने के लिये दर्पण की आवश्यकता पडती है। दर्पण में हमारा प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है वह सच्चा नहीं है पर सच्चे मुख जैसा है। ये शरीर केवल प्रतिबिम्ब हैं ये सच्चे नहीं हैं सच्चा तो वह है जो शरीरों के भीतर बैठकर देख रहा है। इसी प्रकार प्रकट माया/छाया सत्य नहीं है, भगवान सत्य हैं। सत्य की उत्पत्ति-नाश नहीं होता, छाया की ही भगवान से उत्पत्ति और नाश होता है फिर एक भगवान ही शेष रह जाते हैं। ये झूठी माया ईश्वर की प्रेरणा से संसार की रचना कर देती है। भगवान सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण हैं। वही ब्रह्म मायाकृत् शरीरों के भीतर बैठकर देख रहा है। देह रूपी मन्दिरों के भीतर वह जीवात्मा रूप है व बाहर परिपूर्ण होने से वह परमात्मा है। आकाश की भाँति वह व्यापक है। जीवात्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु नहीं होती। हमारा-तुम्हारा स्वरूप जीवात्मा है शरीर नहीं, शरीर माया से बनते हैं। भगवान ही सत्य हैं व वही हमारा-तुम्हारा स्वरूप है - **ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव ना परा** ।।
10	10 May	39				**सामवेद-छा०उ०-छटा अ०** पुत्र श्वेतकेतु के वेदाध्ययन से उत्पन्न अभिमान के नाश हेतु आरुणि ऋषि ने प्रश्न किया - हे पुत्र ! तुमने वह विद्या पढ़ी है अथवा नहीं जिस एक को जानने से सब कुछ जान लिया जाता है जानने के लिये कुछ भी शेष नहीं रहता, अनसुना सुना हुआ व अनदेखा देखा हुआ हो जाता है। इस पर श्वेतकेतु ने कहा कि हे पिता ! ये विद्या तो मैंने नहीं पढ़ी इस प्रकार उसका अभिमान जाता रहा। श्वेतकेतु की प्रपत्ति और सविनय प्रार्थना से प्रसन्न **आरुणि का उपदेश :-** हे सौम्य ! एक माटी को जान लेने से माटी से बने हुए संसार भर के घट-मठ जान लिये जाते हैं क्योंकि घट-मठ के कण-कण में माटी समायी हुई है, उनके नाम-रूप तो अनेक हैं किन्तु माटी से भिन्न नहीं हैं ऐसे ही स्वर्णाभूषण स्वर्ण से भिन्न नहीं हैं अतः एक सोने को जान लेने से सभी आभूषण जान लिये जाते हैं, सभी में सोना समाया हुआ है यद्यपि सबके नामरूप व काम न्यारे-न्यारे हैं। सभी आभूषणों का वास्तविक स्वरूप सोना है, ये सोने से अलग होकर एक क्षण भी नहीं रह सकते क्योंकि सोना कारण है और आभूषण कार्य हैं। कारण सदा अपने कार्य में व्यापक होता है इसलिये कार्य अपने कारण से अभिन्न होता है तथा कार्य का कारण में व्यतिरेक होता है सिद्धान्त इसी प्रकार एक भगवान को जानने से संसार के सभी नाम-रूप जाने जाते हैं क्योंकि कारण से कार्य अभिन्न होता है। सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद परमात्मा ही था → तेज/अग्नि → वायु → जल → पृथ्वी → स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत नाम-रूप उत्पन्न हो गये अतः जगत का कारण एक सच्चिदानंद ब्रह्म ही है उसी प्रकार, जैसे आभूषण का कारण स्वर्ण है। ये जगत ब्रह्म से उत्पन्न होता है ब्रह्म में रहता है और ब्रह्म में ही लीन हो जाता है अतः **'ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है'**। **माटी-स्वर्ण-जल** सत्य हैं परन्तु **घट-मठ, आभूषण व तरंगें** सत्य नहीं है क्योंकि वे अपने कारण में लीन हो जाते हैं और अंत में एक कारण ही शेष रह जाता है। अतः **ये चराचर नामरूप जगत वासुदेव का ही रूप है** जो भगवान से उत्पन्न होता है भगवान में रहता है और भगवान में ही लीन हो जाता ।
11	11 May	32				वेद त्रिकाण्डमय है ये **'कर्म उपासना ज्ञान'** तीनों काण्डों को बताता है। ब्रह्माजी ने कहा कि मनुष्यों के श्रेय सुख के लिये मैंने कर्म, भक्ति व ज्ञानयोग कहे हैं जिनसे भगवान के दर्शन में प्रतिबन्धक क्रमशः मल-विक्षेप-आवरण तीनों दोषों का नाश हो जाता है। वेद में भगवान के दो स्वरूप बताये हैं - **निनि०** और **ससा०** वैसे ही जैसे अग्नि के दो स्वरूप होते हैं **निनि० -** व्यापक अग्नि एक है उसमें अभी आकार प्रकट नहीं हैं व ये अव्यवहारिक है, **ससा० -** उष्णता और प्रकाश के रूप में प्रकट अग्नि में ही सब व्यवहार होता है जैसे ठण्डी दूर करना, भोजन पकाना, प्रकाश करना आदि अतः प्रकट अग्नि से ही सबका काम होता है। भोजनादि बनाने के पश्चात् प्रकट अग्नि पुनः अपने निनि० स्वरूप में समा जाती है, जो अग्नि जलती है वह बुझती भी है, प्रकट अग्नि सदा नहीं रहती पर निनि० अग्नि सदा रहती है इसी प्रकार भगवान का एक निनि० स्वरूप है और एक ससा० । भगवान का जो स्वरूप देखने में आता है वह ससा० स्वरूप है जैसे राम कृष्ण नृसिंह आदि अवतार, इन्हीं में सब व्यवहार होता है निनि० व्यापक ब्रह्म में कोई व्यवहार नहीं होता । पृथ्वी पर जब अधर्म - अत्याचार बढ़ जाता है तब साधुओं की रक्षा एवं दुष्टों के दलन के लिये भगवान ससा० रूप में अवतार लेते हैं। भगवान सर्वकाल-देश-वस्तु में व्यापक अविनाशी हैं जो प्रेम से कहीं भी प्रकट हो जाते हैं जैसे प्रेम व प्रयत्न से अग्नि प्रकट हो जाती है।
12	12 May	36				**सृष्टि के आदि में** सर्वप्रथम भगवान से पुरुष में छाया के समान व रज्जु में सर्प के समान एक माया का प्रादुर्भाव हुआ। जैसे सर्प झूठा है वैसे ही ये माया भी झूठी है। इस माया ने **विद्या** और **अविद्या** दो रूप धारण किये, विद्या में ब्रह्म का आभास **ईश्वर** तथा अविद्या में ब्रह्म का आभास **जीव** हुआ। अतः माया ईश्वर और जीव सब कल्पित हैं फिर ईश्वर ने ईक्षण किया कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ और सृष्टि हो गयी किन्तु वह निर्जीव थी तब परमात्मा उनमें जीव रूप से प्रवेश कर गये और स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत आदि सब उठ खड़े हुए व उनमें व्यवहार होने लगा । परमात्मा अद्वय अनादि अनंत है अपनी माया से उसने स्वयं जगत का रूप धारण कर लिया। बिना सामग्री के माया से बनी चीज़ झूठी होती है अतः ये जगत छाया के समान झूठा ही है। 'जीव' बुद्धि में चेतन परमात्मा का प्रतिबिम्ब है, प्रतिबिम्ब जब बिम्ब में लीन हो जाता है तो बिम्बरूप ही हो जाता है ← इतनी **सृष्टि ईश्वर** की है तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, स्वरूप अज्ञान से बन्ध व स्वरूप के ज्ञान से मोक्ष ← इतनी **सृष्टि जीव** की है। इस प्रकार जीव और ईश्वर की सृष्टि सब कल्पित है। जीव की सृष्टि जीव में → जीव अविद्या में → और अविद्या ब्रह्म में समा जायेगी ऐसे ही ईश्वर विद्यामाया में → व विद्या ब्रह्म में समा जायेगी व फिर एक ब्रह्म ही शेष रह जाता है मंद अंधकार में रज्जु में सर्प का भ्रम हो जाता है किन्तु जब अधिष्ठान रज्जु का ज्ञान हो जाता है तो सर्प रज्जु रूप ही दिखाई पड़ता है क्योंकि भ्रमरूपी सर्प की निवृत्ति रज्जु में हो जाती है। ब्रह्म रज्जु की तरह सत्य वस्तु है व संसार सर्प की भाँति भ्रम मात्र है - झूठ की निवृत्ति सत्य में ही होती है ये माया सत्-चित्-आनंद से पूर्ण पुरुष बहम की छाया है पूर्ण ज्ञान होने पर ये माया सच्चिदानंद ब्रह्म में मिलकर ब्रह्मरूप ही हो जाती है जैसे घट-मठ नष्ट होकर माटी ही हो जायेंगे - **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'** ।। ज्ञानी जगत में 'अस्ति-भाति-प्रिय' रूप से व्यापक ब्रह्म के ही दर्शन करते हैं। जीव ईश्वर का अभेद दर्शन एवं इस संसार को ब्रह्म का ही रूप देखना ज्ञान है। ये जगत ब्रह्म से अलग नहीं है, झूठा जगत भी सत्य में मिलकर सत्य हो जाता है व्यापक ब्रह्म एक अविनाशी, सत् चेतन घन आनंद राशि । अस प्रभु हृदय अछत अविकारी, सकल जीव जग दीन दुःखारी ।।

13	13 May	28				**तैत्तीय उ० :: सृष्टिक्रम ::** उस परम्ब्रह्म परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से सबसे पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से → अग्नि, अग्नि से → जल, जल से → पृथ्वी, पृथ्वी से → औषधियाँ, औषधियों से → अन्न, अन्न से → स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि। दूसरी श्रुति यही कहती है कि अन्न से ही सब भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न को खाकर जीते हैं फिर अन्त में अन्नरूप पृथ्वी में ही लय हो जाते हैं। **अन्न चक्र** भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि सभी भूत-प्राणी अन्न से उत्पन्न होते है, अन्न वर्षा से ← वर्षा मेघ से ← मेघ यज्ञ से ← यज्ञ कर्म/वेद से, तथा वेद की उत्पत्ति अविनाशी परमात्मा से होती है अतः अन्न बहुत उत्पन्न करना चाहिये, अन्न की निंदा नहीं करना चाहिये व अन्न गन्दी जगह में नहीं फेंकना चाहिये क्योंकि अन्न से ही जीवन रक्षा है। सोना-चाँदी मणि-माणिक से जीवन नहीं रह सकता क्योंकि वह खाने की वस्तु नहीं है अतः हमारे जीवन में अन्न से मूल्यवान अन्य कोई वस्तु नहीं है। हमारे लिये पृथ्वी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि पृथ्वी हमें अन्न एवं रहने व चलने-फिरने का स्थान देती है फिर वह विपरीत क्रम से आत्मा में लय हो जाती है हमारी तुम्हारी आत्मा अज है अर्थात् उसका जन्म नहीं होता है इसलिये उसकी मृत्यु भी नहीं होती, द्रष्टा-साक्षी को ही आत्मा कहते हैं ।।	
14	14 May	39				**वेद कहता है कि सृष्टि के आदि में एक मात्र सच्चिदानंद परम्ब्रह्म परमात्मा ही था दूसरा कोई नहीं था ।** उस परमात्मा में रज्जु में सर्प की भाँति प्रकृति की प्रतीति होने लगी। प्रकृति नाम माया का है वह झूठी है व 'सत्-रज-तम' तीन गुण वाली है। उसने सत्व गुण की प्रधानता से विद्या और मलिन सत्व गुण की प्रधानता से अविद्या का रूप धारण कर लिया। विद्या में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर तथा अविद्या में पड़ा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान जीव कहलाने लगा अतः अधिष्ठान ब्रह्म + विद्यामाया + ब्रह्म का प्रतिबिम्ब - ईश्वर का वाच्यार्थ है और अधिष्ठान ब्रह्म + अविद्यामाया + ब्रह्म का प्रतिबिम्ब - जीव का वाच्यार्थ है जगत में **छः अनादि** हैं :- १ **ब्रह्म** २ विद्या अविद्या **माया** ३ **ब्रह्म-माया का सम्बन्ध** ४ **ईश्वर** ५ **जीव** ६ **जीव-ईश्वर का भेद** :: ब्रह्म अनादि अनन्त है व शेष पाँच अनादि सान्त हैं। जब ईश्वर, वेद एवं गुरु कृपा से ब्रह्म का ज्ञान होता है तो अविद्या का नाश हो जाता है जिससे ईश्वर-जीव तथा इनका परस्पर भेद और ब्रह्म-माया का सम्बन्ध उसी ब्रह्म में शान्त हो जाते हैं, **ब्रह्म** सदा एक सा रहता है वह **सच्चिदानंद-अनादि-अनन्त** है अविद्या/ बुद्धि में पड़े आभास की ७ अवस्थायें :- १. अज्ञान २. आवरण ३. विक्षेप ४. परोक्षज्ञान ५. अपरोक्षज्ञान ६. दुःख निवृत्ति ७. अपार हर्ष व परम् सुख-शान्ति ।। **अज्ञान** - मैं ब्रह्म को नहीं जानता → **असत्वापादक आवरण** - ब्रह्म नहीं है एवं **अभानापादक आवरण** - ब्रह्म भासता नहीं है → **विक्षेप** → पंचभूत → दे०इ०म०बु०प्रा० → अखिलं जगत ।। पंच महाभूतों ने जीव की बुद्धि को नष्ट करके अपने परिवार में मिला लिया है। संत महात्मा वेद मंत्र पढ़ कर इन भूतों को उतार देते हैं। गुरु पहले अवान्तर वाक्य सुनाते हैं कि **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** - ब्रह्म का स्वरूप है, इससे असत्वापादक आवरण निवृत्त हो गया, इसे **परोक्षज्ञान** कहते हैं अब गुरु द्वारा वेद के महावाक्य **'तत्त्वमसि'** कि वह सच्चि० ब्रह्म तू ही है इससे अभानापादक आवरण चला गया व **अपरोक्षज्ञान** हो गया कि वह सच्चिदानंद ब्रह्म मैं ही हूँ - ये ही परमात्मा का साक्षात्कार है अतः हमारा तुम्हारा वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म है। जब अज्ञान-अविद्या की निवृत्ति हो गयी तो ब्रह्म-अज्ञान/माया का सम्बन्ध तथा विद्या-अविद्या व इनमें पड़े ब्रह्म के प्रतिबिम्ब जीव-ईश्वर की भी निवृत्ति हो गयी तो अपार हर्ष की प्राप्ति होती है अब शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म ही रह गया वैसे ही जैसे रज्जु के ज्ञान होने से रज्जु में सर्प की भ्रान्ति नष्ट हो जाती है और एक रज्जु ही रह जाती है क्योंकि तीनों काल में एक रज्जु ही थी। इस जगत का अधिष्ठान ब्रह्म है व जगत इसमें अध्यस्थ है अतः ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव ना परा ।।	
15	15 May	29				**भगवान राम का अयोध्यावासियों को उपदेश :-** मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से मिला है जो देवताओं को भी दुर्लभ है। मनुष्य देह के समान अन्य कोई देह नहीं है इस देह से ही भवसागर से पार होना सम्भव है। देवलोक में बैठे देवता भी भारतवर्ष में उत्पन्न मनुष्यों को धन्य कहते हैं क्योंकि मनुष्य देह से ही अपवर्ग की प्राप्ति सम्भव है **जहाँ पवर्ग न हो वह अपवर्ग कहलाता है -** अपवर्ग यानि १ = जिसको पाकर/जानकर अथवा जहाँ जाकर पतन न हो यानि सत्-चित्-आनंद से पूर्ण ब्रह्म २ = जहाँ फल की इच्छा न हो ३ = जहाँ जन्म-मरण का बन्धन न हो ४ = जहाँ कोई भय न हो ५ = जहाँ मृत्यु है ही नहीं - ऐसा अपवर्ग भगवत् धाम है - भगवत् धाम को ही अपवर्ग कहते हैं। जीव मनुष्य देह से ही अपवर्ग यानि भगवत् धाम पा सकता है **भगवान राम कहते हैं कि** भजन करके अपना कल्याण करो। इस मनुष्य शरीर में भगवत् प्राप्ति के सभी साधन उपलब्ध हैं विशेषकर बुद्धि क्योंकि शुद्ध बुद्धि में ब्रह्म ज्ञान होता है। जो नर शरीर पाकर भी अपना कल्याण नहीं करता है वह मन्दमति व स्वयं की निंदा करने वाला है। अन्त समय आने पर वह पछतायेगा, वह मिथ्या ही काल कर्म और ईश्वर को दोष देता है। इस नर देह पाने का फल विषय-भोग नहीं है, विषय-भोग से अन्त में दुःख ही होता है। नर देह पाकर विषयों में मन लगाने वाले मानो अमृत को छोड़कर विष ही पी रहे हैं क्योंकि विषयों से विष ही मिलता है। उसे कोई बुद्धिमान नहीं कहता जो पारस को छोड़कर घुँघची उठा लेता है। ४ खानि व ८४ लाख योनियों में ये जीव भ्रमण कर रहा था ईश्वर ने करुणा करके भटकते हुए इस जीव को नर शरीर दे दिया है कि नर शरीर पा करके वेद शास्त्र व गुरुओं के द्वारा मुझ नारायण को जानकर ८४ लाख योनियों से तुम छूट जाओगे। जो मुझको जानता है वह मेरा ही स्वरूप हो जाता है - 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' और मनुष्य शरीर से ही मुझ ब्रह्म को जाना जा सकता है अतः ये नर शरीर देव दुर्लभ है ।।	
16	16 May	35				**तैत्तीय उ० :: सृष्टिक्रम ::** सृष्टि के आदि में भगवान ही एक अकेले थे। उस परम्ब्रह्म परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से सबसे पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से → अग्नि, अग्नि से → जल, जल से → पृथ्वी, पृथ्वी से → औषधियाँ, औषधियों से → अन्न, अन्न से → वीर्य → स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि। दूसरी श्रुति यही कहती है कि अन्न से ही सब भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न को खाकर जीते हैं फिर अन्त में अन्नरूप पृथ्वी में ही लय हो जाते हैं **वीर्य अन्न की ७वतीं धातु है =** रस - रक्त - माँस - मेदा - अस्थि - मज्जा - शुक्र गर्भोपनिषद - सविस्तार वर्णन ये शरीर अन्न का कीड़ा है, अन्न से ही ७ धातुऐं बनी हैं। वो सातवीं धातु वीर्य भी पानी का बुल्ला है उसी से हमारा शरीर बना है तो ये शरीर हम नहीं हैं ये तो अन्न के बनाये हुए हैं और अन्न रूप पृथ्वी में फिर ये लीन भी हो जायेगा अतः अपने जीवरूप को सभाँलो, हमारा शरीर माता-पिता से उत्पन्न हुआ किन्तु हमारा स्वरूप शरीर नहीं है अपितु जीवात्मा है। जीवात्मा का न जन्म होता है न मरण - **'न जायते म्रियते वा कदाचिन्'** अतः अपने स्वरूप को समझो। भगवान कहते हैं कि सब शरीरों के भीतर बैठकर सबकी आँखों से मैं ही देख रहा हूँ । भगवान की माया से पंचभूत बने, पंचभूतों से अन्न, अन्न से ७ धातु बने व उन्हीं सप्त धातुओं से ये सब शरीर बने अतः ये देह अन्न का विकार है क्योंकि अन्न माटी से उत्पन्न हुआ है तो फिर ये शरीर नष्ट होकर माटी में ही मिल जायेंगे परन्तु इनमें जो जीवात्मा है भगवान कहते हैं कि वह मैं ही हूँ। अपने स्वरूप जीवात्मा को जानो, हमारा जन्म-मरण नहीं होता है। अपने को शरीर मत मानो, जीवात्मा स्त्री-पुरुष नहीं है हम जीवात्मा तो ईश्वर के अंश हैं - अविनाशी ज्ञान स्वरूप अनंत सुखराशि। जीवात्मा और परमात्मा का अभेद दर्शन यानि दोनों को एकरूप जानना ही ज्ञान है। **मैं देह नहीं हूँ** अपितु **देही 'सच्चिदानंद आत्मा' हूँ** - यही ज्ञान का लक्षण है।	
17	17 May	33				**भगवान राम से भ्राता लक्ष्मण के सविनय प्रश्न** १. **ज्ञान वैराग्य** व **माया** का क्या स्वरूप है ? २. **भक्ति** का क्या स्वरूप है जिसके वश में होकर आप भक्त पर दया करते हैं ? ३. **ईश्वर** और **जीव** किसे कहते हैं व इनमें क्या भेद है ? ये सब आप मुझे कहें जिससे मेरी आपके चरणों में रति हो व मेरे शोक मोह भ्रम का नाश हो ।। **भगवान का संक्षेप में उत्तर** हे तात ! तुम मन मति व चित्त लगा कर इनका स्वरूप सुनो ::- माया मैं-मेरा व तू-तेरा बस इतनी ही माया है, माया ने सम्पूर्ण जगत को अपने वश में कर रखा है, जहाँ तक इन्द्रियाँ व इनके विषय हैं, जहाँ तक मन जाये तथा जो कुछ देखने सुनने व विचारने में आता है वह सब माया है। अब उस माया का तुम भेद सुनो :- 'सत्-रज-तम' ३ गुण वाली माया **विद्या** (सत्व प्रधान) और **अविद्या** (मलिन सत्व प्रधान) दो रूप धारण करती है। विद्या ईश्वर की तथा अविद्या जीव की पत्नि बनती है। अविद्यारूप माया बड़ी दुष्ट है, वह अपने स्वामी जीव को भवकूप में डाल देती है जिससे बाहर निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है तथा विद्यारूप माया ईश्वर की पत्नि है जो प्रभु की प्रेरणा से जगत की रचना करती है उसी प्रकार जैसे बिजली की प्रेरणा से मशीनें चलती हैं उसमें अपना निजी कोई बल नहीं है। अविद्या अपने पति को अपने वश में रखती एवं दुःख देती है जबकि विद्या पति की आज्ञा में रहकर जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करती है। ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है। जब कभी जीव भगवान के कृपापात्र संतों की शरण में जाता है तो संत लोग जीव को उसका वास्तविक स्वरूप बता देते हैं। माया छाया के समान दिखाई पड़ती है पर सत्य नहीं है। पुरुष सत्य है द्रष्टा ज्ञानवान है पर छाया दृश्य औरं जड़ है ऐसे ही ईश्वर-जीव ज्ञानवान हैं और माया जड़ एवं झूठी है। स्वप्न का संसार दिखाई	A

						तो पड़ता है पर झूठा होता है, वह माया है। रज्जु में सर्प दिखाई तो पड़ता है पर झूठा है अतः लक्ष्मण जहाँ तक इ०म०बु० जायें वे सब दृश्य होने से माया है - इस प्रकार भगवान ने माया का स्वरूप बताया ।। ज्ञान ज्ञान असीम है वह स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सबमें समाया हुआ है, आदि-अन्त रहित वह सबके भीतर बैठकर सबकी आँखों से देख रहा है, उसे ही **अदृष्टो-द्रष्टा** कहते हैं जो दिखाई नहीं देता पर देखता है परन्तु जो दिखाई देता है वह माया है, माया को ज्ञान नहीं है। सब देहों में बैठकर देखने वाला द्रष्टा ही ब्रह्म है तथा दृश्य माया है। द्रष्टा 'ज्ञान' कण-कण में समाया है हमारा तुम्हारा स्वरूप तो ज्ञान है व शरीर माया है इसलिये सबमें ज्ञान को देखना चाहिये। हम आप जा०-स्व०सु० को देखते हैं, सबके शरीर माया हैं व उनमें बैठा द्रष्टा एक अद्वितीय परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। आकाश के समान व्यापक ब्रह्म का स्वरूप सच्चिदानंद है। दृश्यमान देह में बाल्य-युवा-वृद्धावस्थायें होती हैं पर द्रष्टा में ये अवस्थायें नहीं हैं, देखने वाला एक अद्वितीय अदृष्टो-द्रष्टा **'ज्ञान'** है अतः हमारा तुम्हारा स्वरूप **ज्ञान-स्वरूप** द्रष्टा-साक्षी है।	
18	18 May	42				**भगवान राम से भ्राता लक्ष्मण के सविनय प्रश्न** १. **ज्ञान वैराग्य** व **माया** का क्या स्वरूप है ? २. **भक्ति** का क्या स्वरूप है जिसके वश में होकर आप भक्त पर दया करते हैं ? ३. **ईश्वर** और **जीव** किसे कहते हैं व इनमें क्या भेद है ? ये सब आप मुझे समझाकर कहें जिससे मेरी आपके चरणों में रति हो व मेरे शोक मोह और भ्रम का नाश हो ।। **भगवान का संक्षेप में उत्तर** हे तात् ! तुम मन मति व चित्त एकाग्र कर इनका स्वरूप सुनो ::- माया **'मैं'** यानि शरीर में अहं भाव माया है क्योंकि सारे शरीर मेरी माया से बने हैं, शरीरों का समूह ही संसार है। अनंत कोटि ब्रह्माण्ड मेरी माया से क्षण मात्र में बन जाते हैं - ।। यशोदा मैया एवं अर्जुन को विराटरूप दर्शन का सविस्तार वर्णन ।। **'मोर'** यानि इस शरीर के सम्बन्धी व **'तू'** और **'तोर'** - ये सब माया है। भगवान कहते हैं कि हे भाई **'इन्द्रियों'** व इनके विषय **'शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध'** और जहाँ तक **मन** जाये, वह सब माया जानो । इस प्रकार सारे संसार को भगवान ने अपनी माया बताया है। भगवान ही सत्य हैं माया झूठी है पर सभी शरीरों के भीतर बैठकर सबकी आखों से भगवान ही देख रहे हैं *सो जानहिं जेहि देव जनाई, जानत तुमहिं तुमहिं होई जाई /// ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख राशि* जल सत्य है व तरगें झूठी हैं, वे जल से उत्पन्न होती हैं जल में चलती-फिरती हैं व जल में ही लीन हो जाती हैं। भगवान आनंद सिन्धु है व लहरों के समान ये शरीर/जगत भगवान में उत्पन्न होते और लीन हो जाते हैं फिर एक भगवान ही शेष रह जाते हैं। जीव तो भगवान का अंश ही है अतः अविनाशी है पर जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। इन शरीरों का जन्म मेरी माया से होता है अतः ये अवश्य ही मरेंगे भी परन्तु अर्जुन तुम्हारा स्वरूप जीव है,जीव का जन्म नहीं होता अतः मृत्यु भी नहीं होती इसलिये जीवात्मा को मेरा सच्चिदानंद स्वरूप ही जानो ।।	B
19	19 May	49				और माया ब्रह्म :: सृष्टि के आदि में एक सच्चिदानंद भगवान ही थे दूसरा कोई नहीं था। भगवान से रज्जु में सर्प की भाँति अथवा पुरुष में छाया की भाँति स्वयं ही माया प्रकट हुई । रज्जु सत्य है पर रज्जु में सर्प भ्रम मात्र है, रज्जु के अज्ञान से रज्जु में अपने संस्कार के अनुसार कल्पना से रज्जु में सर्प दण्ड माला आदि का भ्रम उत्पन्न हो जाता है *जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी* भगवान अपनी भावना के अनुसार सबको भिन्न भिन्न रूप में दिखाई पड़ते हैं - स्वामी, सखा, बन्धु, पुत्र, गुरु, शिष्य अथवा शत्रु - भगवान को किसी भी भाव से भजो भगवान भक्त को अपना धाम ही दे देते हैं जैसे अमृत को विष समझकर पीने से भी वह अमर ही करेगा // शत्रु भाव से भजने वाले कंस, शिशुपाल, पूतना आदि को भी प्रभु ने वध करके अपने धाम में भेज दिया // सच्चिदानंद भगवान **'अस्ति-भाति-प्रिय'** रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं वे भक्त की मन-बुद्धि में उसकी भावना के अनुसार ही प्रकट हो जाते हैं // **दृष्टान्त** - वन-प्रवास पश्चात भगवान राम अयोध्या लौटने पर सभी अयोध्यावासियों से यथा-योग्य एक साथ ही मिले जैसे सूर्य पानी से भरे अनेकों घटों में एक साथ ही प्रतिबिम्बित हो जाता है // भगवान को किसी भी भावना से भजो भगवान अवश्य मिलते हैं। भगवान के भक्त संतलोग जगत में सभी देहरूपी देवालयों में देव 'शिव' यानि 'आत्मा' को ही देख रहे हैं। देखने वाला देव एक ही है जो सब देहों में बैठकर सबकी आँखों से देख रहा है। सबको संशय रहित ज्ञान है कि मैं देखता हूँ, जा०-स्व०-सु० को देखता हूँ, देखने वाला मेरा अखण्ड ज्ञान है। ये देखने वाला देव एक ही है पर देहरूपी देवालय अनेक हैं। सभी देह भगवान क्षणमात्र में अपनी माया से बना देते हैं व उनमें बैठकर सबकी आँखों से स्वयं ही देखते है ।। *व्यापक ब्रह्म एक अविनाशी, सत् चेतन घन आनंद राशि* ।। भागवत्, गीता, रामायण आदि ग्रन्थ सब भगवान का ही ज्ञान कराते हैं। ये देहरूपी मन्दिर सदा नहीं रहते किन्तु इनमें बैठा देव अविनाशी चेतन व सुखराशि है इसलिये अपने को द्रष्टा-साक्षी भगवान का ही स्वरूप पहचानो पर ये शरीर तो माया से बने हैं अतः नाशवान हैं। **द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया है** ।	
20	20 May	33				**तैत्तीय उ० :: सृष्टिक्रम ::** सृष्टि के आदि में भगवान ही एक अकेले थे। उस परम्ब्रह्म परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से सबसे पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से → अग्नि, अग्नि से → जल, जल से → पृथ्वी, पृथ्वी से → औषधियाँ, औषधियों से → अन्न, अन्न से → वीर्य → स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि। दूसरी श्रुति यही कहती है कि अन्न से ही सब भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न को खाकर जीते हैं फिर अन्त में अन्नरूप पृथ्वी में ही लय हो जाते हैं **वीर्य अन्न की ७वीं धातु है =** रस - रक्त - मॉस - मेदा - अस्थि - मज्जा - शुक्र /// **हमारे ३ शरीर हैं :-** पंचतत्वों के पंचीकरण से २५ तत्वों का **स्थूल शरीर**, अपंचीकृत् पंचतत्वों से १६ तत्वों का **सूक्ष्म शरीर** तथा अपने स्वरूप को न जानना कि मैं सच्चिदानंद ब्रह्म परमात्मा हूँ ये अज्ञानरूप **कारण शरीर** है, सुषुप्ति अज्ञान अंधकार रूप है ← स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर का सविस्तार वर्णन → तीनों शरीर जड़ हैं इन्हें ज्ञान नहीं है पर हम ज्ञान स्वरूप चौथे हैं जो तीनों शरीरों में रहते है व इन्हें जानते हैं। तीन शरीरों के अन्तर्गत् - **जागृत** में स्थू०श०, **स्वप्न** में सू०श० होते हैं तथा **सुषुप्ति** कारण शरीर कहलाती है क्योंकि उसी से स्वप्न और जागृत के शरीर निकलते हैं व उसी सुषुप्ति में लीन भी हो जाते हैं और चौथे हम तीनों अवस्थाओं को जानते हैं पर ये तीनों अवस्थायें हमें नहीं जानतीं क्योंकि ये अज्ञानरूप हैं। इन्हीं के अन्तर्गत् **पाँच कोष** भी हैं - १. **अन्नमय कोष** = स्थू०श० २. **प्राणमय कोष** = पाँच कर्मेन्द्रियों+पाँच प्राण ३. **मनोमयकोष** = पाँच ज्ञानेन्द्रियों+मन ४. **विज्ञानमयकोष** = पाँच ज्ञानेन्द्रियों+बुद्धि ५. **आनंदमय कोष** = अपने स्वरूप का अज्ञान अतः तीन शरीर कहो, तीन अवस्थायें कहो अथवा पाँच कोष कहो सब एक ही बात है पर हम इन सबसे बिल्कुल अलग हैं। ये सब बनते बिगड़ते रहते हैं पर हम सदा रहते हैं व हम ही इन सबको जानने वाले हैं। इस प्रकार माया से ये ३नों देह, ३ अवस्थायें या ५ कोष बन गये और जब **विपरीत क्रम से इनका लय** होगा तो शरीर → पंचभूत → पंचतन्मात्रायें → अहंतत्त्व → महत् तत्त्व → अव्यक्त या महामाया शक्ति में लय हो जायेंगे जा०स्व०सु० जड़ एवं माया मात्र हैं व हम इनके देखने वाले हैं - द्रष्टा-साक्षी को ही ब्रह्म कहते हैं। हमारा ज्ञान रूपी प्रकाश उदय-अस्त रहित सूर्य है जो सदैव एक समान प्रकाशमान रहता है। हम सबको जानते हैं पर हमें कोई नहीं जानता। द्रष्टा ब्रह्म है व दृश्य माया है। स्त्री-पुरुष बालक-वृद्ध सब शरीर के नाम हैं पर इन्हें ज्ञान नहीं है, इनमें बैठकर हम ही देख रहे हैं। देखने वाला सब शरीरों में एक ही है इसे ही ब्रह्म कहते हैं। मैं देखता हूँ और सारा जगत दिखाई पड़ता है। दृश्यमान जगत माया है व हम द्रष्टा ब्रह्म हैं अतः अपने को द्रष्टा ब्रह्म जानो। हमारे सिवा दूसरा कोई है ही नहीं पर जो दूसरा दिखाई पड़ता है वह जा०-स्व०-सु० माया है जो दिखाई तो पड़ती है पर है नहीं ।।	
21	21 May	53				**वेद कहता है कि प्रकृति और पुरुष दो तत्त्व हैं,** सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण को पुरुष कहते हैं ऐसे सच्चिदानंद परमात्मा ही पुरुष हैं। **प्र + कृति = प्रकृति**, **प्र** = प्रत्यक्ष रूप से, **कृति** = सृष्टि करने वाली - **प्रकृति** कहलाती है। उसी को महामाया शक्ति, सीता, लक्ष्मी, आदि शक्ति भी कहते हैं, इसके अनेक नाम हैं - अव्यक्त, अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका, परा व क्षण मात्र में बिना सामग्री के सम्पूर्ण जगत उत्पन्न कर देती है इसलिये इसे माया भी कहते है। क्योंकि ये संसार बिना सामग्री के बना है इसलिये मिथ्या है - इन्द्रजालवत्, स्वप्नवत् राजा के दरबार में नट् द्वारा बाजीगर के खेल प्रदर्शन का दृष्टान्त भ० राम का बाल्यकाल में कौशल्या अम्बा को अपने रोम-रोम में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दर्शन भ० कृष्ण का यशोदा अम्बा को अपने मुख में अनंत कोटि ब्रह्मांड, विराटरूप एवं प्रलय लीला दर्शन गीता में अर्जुन को भ० कृष्ण द्वारा विराटरूप एवं प्रलय लीला दर्शन भगवान सम्पूर्ण माया के पति हैं वे अपनी माया से क्षण मात्र में विश्व का रूप धर लेते हैं। भगवान एक हैं पर माया से वे अनेक रूप धारण कर लेते हैं। भगवान तो सत्य हैं पर बिना सामग्री के क्षण मात्र में बना ये जगत झूठा है - इन्द्रजालवत् । भगवान माया से बने सभी शरीरों में बैठकर स्वयं ही देख रहे हैं। जीवात्मा के रूप में देखने वाले स्वयं भगवान ही हैं। हम ही देखते है, इन शरीरों को तो ज्ञान नहीं है। ये देह सत्य नहीं हैं भगवान ही सत्य हैं। अपने को भगवान का ही स्वरूप जानना चाहिये क्योंकि हम-आप द्रष्टा-साक्षी	

						आत्मा हैं व सारा दृश्य भगवान की माया है। **द्रष्टा ब्रह्म है व दृश्य माया है यही सभी वेदों का निर्णय है।** भगवान सत्य हैं व उनकी माया झूठी है। **जीवात्मा का जन्म-मरण नहीं होता क्योंकि जीवात्मा भगवान का ही रूप है।**	
22	22 May	40				**वेद कहता है कि सृष्टि के आदि में एक सच्चि० ब्रह्म परमात्मा ही थे और दूसरा कोई नहीं था** फिर रज्जु में सर्प की भाँति, पुरुष में छाया की भाँति परमात्मा में माया का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण पुरुष हैं उन्हीं पूर्ण पुरुष से ये माया स्वयं ही प्रकट हो गयी और भगवान ने उस माया को देखा। **माया** ने **विद्या** और **अविद्या** दो रूप धारण कर लिये । अधिष्ठान ब्रह्म + सत्वगुण प्रधान विद्यामाया + चेतन का प्रतिबिम्ब = सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान **ईश्वर** तथा अधि०ब्रह्म + मलिन सत्वगुण प्रधान अविद्यामाया + चेतन का प्रतिबिम्ब = अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान **जीव** का वाच्यार्थ हुआ । ईश्वर जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार का काम करता है तथा वह ब्रह्म माया जीव एवं स्वयं अपने प्रतिबिम्ब स्वरूप को जानता है परन्तु जीव न तो ब्रह्म, माया, ईश्वर को जानता है और न अपना प्रतिबिम्ब स्वरूप ही जानता है। जब षट्क-सम्पदा युक्त होकर ये जीव गुरु की शरण में जाता है तो **गुरु उसे माया, ब्रह्म, ईश्वर और जीव का अपना स्वरूप ३ लक्षणाओं के द्वारा बताता है** जो इस प्रकार हैं :- जहत (त्याग) लक्षणा - **'गंगा में गौशाला है'** - इसमें अभिप्राय यह है कि गौशाला गंगा के किनारे पर है अर्थात् पूरे वाच्यार्थ को त्याग कर नये का ग्रहण हुआ अतः ये लक्षणा 'तत्त्वमसि' महावाक्य में नहीं घटती क्योंकि इसमें सम्पूर्ण महावाक्य का ही त्याग हो जाता है अजहत् लक्षणा - **'लाल रंग दौड़ता है'** - यहाँ अभिप्राय है कि लाल रंग का घोड़ा दौड़ता है, यहाँ इस लक्षणा के अनुसार 'तत्त्वमसि' महावाक्य में जीव और ईश्वर का भेद बना रहा व अधिक का ग्रहण होगा तो अनर्थ की ही प्राप्ति होगी भाग-त्याग लक्षणा - **'सो अयं देवदत्ता'** - संन्यासी के वेश में ये वही काशी-नरेश देवदत्त है जिसकी सवारी हमने काशी में देखी थी, यहाँ देश-काल-वस्तु को छोड़ो केवल व्यक्ति को ही देखो तो ये वही राजा है - इसको भाग-त्याग लक्षणा कहते हैं यानि जो पहले और अभी के विरोधी भाग 'देश-काल-वस्तु' हैं उनको छोड़ दो तो ये वही काशी नरेश देवदत्त है। **अब ये लक्षणा 'तत्त्वमसि में घटाओ →** तद् पद (ईश्वर) = ब्रह्म + विद्या माया + चेतन का प्रति०, त्वम् पद (जीव) = ब्रह्म + अविद्या माया + चेतन का प्रति०, इसमें विरोधी भाग का त्याग व अविरोधी का ग्रहण करो यानि विद्या-अविद्या का त्याग करो तो उनमें पड़े प्रतिबिम्ब का भी त्याग हो गया तो शेष ब्रह्म ही बचा - जीव-ईश्वर दोनों में । भाग-त्याग लक्षणा से जीव-ईश्वर में ब्रह्म ही शेष रहा - ब्रह्म का त्याग तो हो नहीं सकता क्योंकि ब्रह्म तो सत्य है तथा माया और प्रतिबिम्ब मिथ्या हैं, मिथ्या का ही त्याग हो सकता है तो माया-अविद्या के त्याग से उनमें पड़े प्रतिबिम्ब का भी त्याग हो गया क्योंकि वो भी मिथ्या ही होते हैं बिम्ब ही सत्य होता है अतः जो बिम्बरूप ब्रह्म है वह तो जीव और ईश्वर का एक ही है इस प्रकार **'तत्त्वमसि'** महावाक्य में - हे जीव जो ब्रह्म है वो तू है और जो तू है वह ब्रह्म है, जो ब्रह्म है वह हमारी तुम्हारी आत्मा है और जो आत्मा है वह ब्रह्म है - इस प्रकार भाग-त्याग लक्षणा द्वारा जीव-ईश्वर का स्वरूप सच्चि०ब्रह्म सिद्ध हुआ, वही हमारा आपका स्वरूप है तथा माया ब्रह्म से प्रकट होती है ब्रह्म के आश्रित रहती है फिर ब्रह्म में ही समा जाती है क्योंकि माया-अविद्या कल्पित हैं और उनमें पड़े प्रति० भी कल्पित हैं - माया ब्रह्म में समा जाती है क्योंकि मिथ्या की निवृत्ति सत्य में ही हुआ करती है जैसे छाया की निवृत्ति पुरुष में होती है । अन्त में शुद्ध ब्रह्म ही शेष रहता है व जीव-ईश्वर का वास्तविक स्वरूप शुद्ध ब्रह्म ही है अतः हमारा तुम्हारा स्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म ही है, दे०ह०म०बु० नहीं है, ये शरीर ईश्वर ने अपनी माया से बनाये हैं माया से बनी चीज़ झूठी ही होती है ।।	
23	23 May	28				**वेद कहते हैं कि सुख स्वरूप सच्चिदानंदघन एक ब्रह्म ही है** और ब्रह्म ही हमारा तुम्हारा स्वरूप आत्मा है । जो आत्मा है वह ब्रह्म है और जो ब्रह्म है वह आत्मा है। आत्मा ही सुखरूप-सतुरूप-ज्ञानरूप है तथा ये जगत असत्-जड़-दुःखरूप है । आत्मा सदा रहता है व इसका जन्म नहीं होता अतः सत् है, ज्ञानरूप है क्योंकि ज्ञान में ही देखना बनता है व आत्मा ही आनंदरूप है। अर्जुन ! मुझे पाकर जीव मुझ सच्चिदानंद का ही स्वरूप हो जाता है। ये शरीर मृत्यु का भोजन है, क्षण-क्षण मृत्यु इसे खा रही है। भगवान कहते हैं कि ये जगत मृत्यु और दुःखों से ही भरा है। अर्जुन ! मुझे प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं होता । मैत्री से याज्ञवल्क्य कहते हैं कि आत्मा को देखना चाहिये, सुनना चाहिये, निधिध्यासन करना चाहिये क्योंकि आत्मा सबसे प्रिय एवं सुखरूप है। पत्नि-पति-पुत्र को अपने सुख के लिये ही क्रमशः पति-पत्नि-पिता प्यारे है उनके सुख के लिये नहीं **(दृ० - प्रियता की तारतम्यता)**। सारे जगत में यह विदित है कि अपना आत्मा ही सुखरूप है किन्तु अज्ञानवश जीव संसार को ही सुखरूप समझता है। प्राणों से भी प्यारा आत्मा है, आत्मा अमर है, आत्मा सतुरूप-ज्ञानरूप-सुखरूप है। हमारी आत्मा हमारा स्वरूप है। आत्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु नहीं होती। संसार में ऐसा कोई नहीं जो आत्मा को मार सके। आत्मा ज्ञान स्वरूप है क्योंकि देखना तो ज्ञान में ही होता है तथा दिखाई पड़ने वाले दे०ह०म०बु० तो अज्ञानरूप हैं अतः हमारा स्वरूप सच्चिदानंद है। मैं देह नहीं हूं क्योंकि देह जन्मता मरता है। मैं तो सच्चिदानंद स्वरूप हूँ, हमारा तुम्हारा आत्मा आनंदरूप सुखराशि है इसलिये **'तरति शोकं आत्मवित्'** - जो आत्मा को जानता है वह भवसागर से पार हो जाता है । जन्म-मरण देह के, सुख-दुःख मन के व भूख-प्यास प्राणों के धर्म हैं ये माया राज्य के हैं , ये दृश्य हैं व हम द्रष्टा हैं। आत्मा सबसे असंग हैं व अपना स्वरूप अमृत, सुख का स्वरूप सच्चिदानंद है - पहचानो अपने स्वरूप को ।।	
24	24 May	39				**गीता अ० १३/१-३ ::** भगवान कृष्ण बताते हैं कि हे अर्जुन ! ये शरीर **क्षेत्र** है और जो इन्हें जानता है वह **क्षेत्रज्ञ** है, क्षेत्रं = क्षेत्र + ज्ञ = जानाति = क्षेत्रज्ञ यानि ये शरीर क्षेत्र हैं और जो शरीर में रहने और इसे जानने वाला क्षेत्रज्ञ है वही हमारी जीवात्मा है जो शरीर को जानता है पर शरीर हमें नहीं जानता । मनुष्य पशु-पक्षी देव-दानव सब क्षेत्र हैं और इन शरीरों में रहने व इन्हें जानने वाला क्षेत्रज्ञ है । अर्जुन सब क्षेत्रों में जो क्षेत्रज्ञ है उसे तुम मेरा स्वरूप जानो ईश्वर और जीव दोनों के ३ शरीर होते हैं व ४था क्षेत्रज्ञ है, क्षेत्रज्ञ ज्ञानवान है और क्षेत्र जड़ हैं जिन्हें ज्ञान नहीं है । **तीन शरीर** इस प्रकार हैं :- **स्थूल शरीर** - जो दिखाई पड़ता है वह स्थूल शरीर है, पंचीकृत पंचमहाभूतों से बना ये देह रहने का मकान मात्र है । **सूक्ष्म शरीर** - अपंचीकृत पंचमहा भूतों से बने १६ तत्त्वों के सू०श० में ही सब कर्म होते हैं । **कारण शरीर** - अपने स्वरूप का अज्ञान ही कारण शरीर है अर्जुन **कर्म के पाँच हेतु** हैं :- १ अधिष्ठान - स्थूल देह, जहाँ बैठकर सब कर्म किये जाते हैं २ कर्ता - साभास अन्तःकरण (म०बु०चि०अहं०), इसी अन्तःकरण में भगवान का प्रतिबिम्ब पड़ता है व इस प्रतिबिम्ब को भी कुछ ज्ञान होता है । भगवान तो अनंत अखंड ज्ञान स्वरूप हैं बुद्धि में उनका आभास पड़ने से बुद्धि में भी थोड़ा ज्ञान आ जाता है, चित्त चिन्तन करता है, अहंकार अहं भाव करता है इसलिये अन्तःकरण ज्ञान होने से कर्ता हो जाता है ३ करण - पृथक-पृथक ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ ज्ञान और कर्म के साधन हैं इन्हीं से वस्तुओं का ज्ञान एवं कर्म होता है ४ चेष्टा - नाना प्रकार की चेष्टा/क्रियाऐं प्राणों से होती हैं। कोई भी इन्द्रिय बिना प्राण के क्रिया नहीं कर सकती, प्राणों से ही शरीर का जीवन है ५ दैवम् - इन्द्रियों के अनुग्राहक देवताओं के अनुग्रह से ही इन्द्रियों से किसी प्रकार का कर्म होता है । **अनुग्राहक देवता** :- हाथ के इन्द्र, पैर के विष्णु, नेत्र के सूर्य, कान के दिशु व जिह्वा के वरुण । देवताओं के अनुग्रह बिना शरीर, मन अथवा वाणी से धर्म-अधर्म, अच्छा-बुरा, न्याय-अन्याय कोई भी कर्म असम्भव है। पर आत्मा अकर्म है व इन कर्मों का द्रष्टा-साक्षी मात्र है यानि वह इन्द्रियों के कर्मों को केवल देखता रहता है करता कुछ नहीं है। इसी प्रकार ईश्वर में न कर्तृत्व है न कर्म है, न ही वह लोकों का सृजन करता है - ये सब तो स्वभाव से ही, स्वयं ही हो रहा है। भगवान का आभास/प्रतिबिम्ब अवश्य पड़ता है और प्रकृति के कार्यों में कर्म स्वयं होते हैं तथा सभी कर्म सूक्ष्म शरीर में होते हैं // समष्टि जीवों के स्थूल श० = **विराट,** समष्टि जीवों के सूक्ष्म श० = **हिरण्यगर्भ,** समष्टि जीवों के अज्ञान रूप कारण श० = **अव्याकृत, माया, प्रकृति** ।। समष्टि शरीरों में जीव के व्यष्टि शरीर स्वयं ही आ जाते हैं। भगवान कहते हैं कि समष्टि-व्यष्टि सभी देहों/क्षेत्रों में एक मैं ही द्रष्टा/क्षेत्रज्ञ हूँ, शरीर सभी क्षण मात्र में बन और मिट जाते हैं। ईश्वर के शरीर व सारी सृष्टि ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होती है, रहती है एवं लय हो जाती है। अर्जुन तू भी क्षेत्रज्ञ है जो अपने शरीर को जानता है अतः तू अपने को क्षेत्र मत मान क्योंकि हमारा तुम्हारा स्वरूप क्षेत्रज्ञ है। शरीरों का ही जन्म-मरण होता है ईश्वर की इच्छा और माया से, क्षेत्रज्ञ का जन्म-मरण नहीं होता इसलिये अपने को क्षेत्रज्ञ-जीवात्मा जानो और शरीर को क्षेत्र । जीवात्मा भी परमात्मा का ही स्वरूप है //	
25	25 May	28				वेद कहते हैं कि **सच्चिदानंद परमू ब्रह्म परमात्मा ही परम सत्य हैं, अखंड ज्ञान है, अनंत आनंद है** इस आनंद सिन्धु की एक बिन्दु मात्र से सारा संसार सुखी हो रहा है। बिना आनंद सिन्धु के पाये बिन्दु मात्र से जीव की प्यास नहीं बुझती है तो यदि सम्पूर्ण संसार भी किसी को मिल जाये तो एक बूँद का ही आनंद मिलेगा व उससे जीव की प्यास नहीं बुझेगी। जीव सुख का प्यासा है वह जगत में **'स्त्री पुत्र धन राज्य'** में सुख ही ढूँढ रहा है अतः जब सारे संसार में एक बूँद ही सुख है तो इसकी प्यास कैसे मिटेगी इसलिये बिना भगवान को पाये प्यास नहीं मिटेगी। गीता में भगवान कृष्ण ने बताया है कि ये संसार दुःख और मृत्यु का समुद्र है क्योंकि मैं	

						ही एक आनंद सिन्धु हूँ व मुझे ही पा करके उसकी सुख की प्यास बुझ सकती है। जीव की संसार में सुख की खोज निरर्थक है। भगवान को पाने में भगवान की वाणी वेद और गुरु ही साधन हैं। बिना अर्थ जाने वेद गीता रामायण भागवत् का पाठ व्यर्थ ही होता है। जो 'राम राम राम राम' जपता है परन्तु राम का अर्थ जानता ही नहीं तो उस जप का क्या लाभ ? उससे क्या कल्याण होगा ? अतः **भगवान का नाम अथवा वेद गीता रामायण आदि को अर्थ सहित ही पढ़ना चाहिये** और जहाँ अर्थ समझ में न आवे तो गुरुजनों से उसका अर्थ पूछना चाहिये क्योंकि **अर्थ ही सार है, अर्थ के बिना सब व्यर्थ है, अर्थ जानने से ही कल्याण होता है।** **राम + अयन = रामायण** यानि **राम का घर**, तो यदि राम के घर जाकर बिना राम से मिले ही चले आये तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये गीता रामायण भागवत् के अर्थ जानने से भगवान मिलते हैं, **इन सभी ग्रन्थों का अर्थ भगवान ही है।**	
26	26 May	42				भगवान के ज्ञान में गुरु ही श्रेष्ठ हैं जो स्वर-व्यंजन रूप वेदों का अर्थ बताते हैं। वेद **'कर्म-उपासना-ज्ञान'** त्रिकाण्डमय हैं तथा कर्मकाण्ड 'चरण', भक्तिकाण्ड 'हृदय' व ज्ञानकाण्ड 'सिर' है। चारों वेदों के ज्ञानकाण्ड **'उपनिषद'** हैं। सिरोभाग उपनिषद का जो अध्ययन नहीं करते व केवल कर्म और भक्तिकाण्ड को ही पढ़ते हैं वे मानो सिर को काटकर धड़ को ही सँभालते हैं अतः उपनिषद, गीता, ब्रह्म सूत्र वेदों के सिरोभाग सर्वश्रेष्ठ हैं **अन्नपूर्णोपनिषद :: पंच भ्रम** :: १. भेद भ्रान्ति = जीव-ईश्वर अलग अलग हैं - दृ० : बिम्ब-प्रतिबिम्ब २. कर्तृत्व-भोक्तृत्व भ्रान्ति = आत्मा कर्ता-भोक्ता है - दृ० : स्फटिकमणि और लाल फूल ३. संग भ्रान्ति = आत्मा का तीनों शरीरों से संग हो गया है - दृ० : घटाकाश-महाकाश ४. विकार भ्रान्ति = ये जगत परमात्मा का विकार है - दृ० : रज्जु-सर्प ५. कारण रूप परमात्मा से जगत भिन्न एवं सत्य है = दृ० : स्वर्ण और आभूषण **भेद भ्रान्ति** -जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब सूर्य में कल्पित हैं वैसे ही ब्रह्म में बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनों कल्पित हैं। प्रतिबिम्ब की अपेक्षा से बिम्ब कहा जाता है जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब सूर्य में कल्पित है एसे ही ब्रह्म में बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनों कल्पित हैं। प्रतिबिम्ब की अपेक्षा से बिम्ब कहा जाता है। बिम्ब देखता है जड़ प्रतिबिम्ब दृश्य है उसमें जो आँखें हैं वह झूठी हैं। विद्या-अविद्या रूपी दर्पण में सच्चिदानंद ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है जो क्रमशः ईश्वर और जीव कहलाता है // प्रतिबिम्ब सत्य नहीं होता बिम्ब ही सत्य होता है, बिम्ब **'ब्रह्म'** से ही विद्या-अविद्या में प्रतिबिम्ब प्रकट होता है इसलिये - **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'** - अतः ईश्वर और जीव दोनों मिथ्या हैं // क्योंकि प्रतिबिम्ब की निवृत्ति बिम्ब में ही होती है जैसे छाया पुरुष से प्रकट होती है, पुरुष के आश्रित रहती है फिर पुरुष में ही लीन हो जाती है तथा पुरुष में मिलकर सत्य हो जाती है। झूठी चीज़ सत्य में मिलकर सत्य हो जाती है इसी प्रकार जीव-ईश्वर जब बिम्ब ब्रह्म में समा जाते हैंतो ब्रह्मरूप ही हो जाते हैं :: प्रतिबिम्ब सहित झूठी विद्या-अविद्या रूप माया हटने पर एक ब्रह्म ही शेष रहेगा जैसे अधिष्ठान रज्जु के ज्ञान होने पर भ्रमरूप सर्प भी रज्जुरूप ही हो जाता है ऐसे ही भ्रमरूप जगत अधिष्ठान ब्रह्म के ज्ञान होने पर ब्रह्मरूप ही हो जाता है :: // ब्रह्म ही सत्य है, ईश्वर और जीव ब्रह्म में कल्पित हैं, जीव-ईश्वर का अभेद ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है, विषयों सें अनासक्त मन अर्थात् मनोनिग्रह ही ध्यान है, मन में कोई पाप न रह जाये यही वास्तविक स्नान है तथा इन्द्रिय निग्रह ही शौच है //	१.
27	27 May	29				**भगवान राम और सीता ही जगत के माता-पिता हैं,** चराचर जगत की उत्पत्ति इन्हीं से होती है। स्त्री और पुरुष दोनों के मिलन से ही सृष्टि हो सकती है, स्त्री अथवा पुरुष दोनों ही अकेले संतान नहीं उत्पन्न कर सकते - सृष्टि का यही नियम है इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष मिलकर सृष्टि करते हैं। भगवान राम (सत्-चित्-आनंद से पूर्ण) पुरुष हैं व पत्नि सीता प्रकृति हैं। सृष्टि के लिये **निमित्त** और **उपादान** दोनों कारण की आवश्यकता होती है, पुरुष निमित्त तथा प्रकृति उपादान कारण है। उपादान कारण संतान के कण-कण में व्याप्त होता है किन्तु निमित्त कारण अलग हो जाता है। किसी भी वस्तु के निर्माण हेतु निमित्त कारण में **'ज्ञान-इच्छा-प्रयत्न'** यानि क्रमशः बुद्धि-मन-इन्द्रियाँ तीनों का होना अनिवार्य है // दृ० : घट के निर्माण में निमित्त-कारण कुम्भकार ज्ञान-इच्छा-क्रिया के संयोग से ही घट बना सकता है व माटी उपादान कारण है, माटी में ज्ञान-इच्छा-क्रिया तीनों नहीं है पर घट के कण-कण में माटी व्याप्त होगी क्योंकि माटी से घट अलग नहीं रह सकता । कारण की कार्य में व्यापकता होती है, नाम-रूप तो उपादान कारण के ही होंगे पर जो निमित्त कारण है वह घट बनाकर अलग हो जायेगा, उसकी घट में व्यापकता न होगी अतः निमित्त और उपादान दोनों से मिलकर ही सृष्टि होगी // ऐसे ही भगवान राम निमित्त-कारण **'पुरुष'** हैं व सीता उपादान-कारण **'छाया'** के समान हैं। महामाया सीता में ज्ञान-इच्छा-क्रिया नहीं हैं इसलिये निमित्त-कारण राम की प्रेरणा से ही उपादान-कारण सीता सृष्टि करती हैं अतः सारी सृष्टि सीताराम का ही स्वरूप है - 'सिया-राम मय सब जग जानी, करहुँ प्रनाम जोरि जुग पाणी' ।।	
28	28 May	38				गुरु को वेद एवं ईश्वर से भी श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि गुरु ही ब्रह्म की वाणी वेद का अर्थ बताने में प्रत्यक्ष हैं इसलिये गुरु में ईश्वर से अधिक भक्ति करना चाहिये क्योंकि गुरु के बिना आत्म-ज्ञान नहीं हो सकता, गुरु के बिना तो व्यवहारिक ज्ञान भी नहीं होता है ऐसे ही ब्रह्म-ज्ञान ब्रह्म ज्ञानी गुरु से ही होता है **अन्नपूर्णोपनिषद :: पंच भ्रम** :: १. भेद भ्रान्ति = जीव-ईश्वर का भेद - दृ० : बिम्ब-प्रतिबिम्ब २. कर्तृत्व-भोक्तृत्व भ्रान्ति = आत्मा कर्ता-भोक्ता है - दृ० : स्फटिकमणि और लाल फूल ३. संग भ्रान्ति = जीव का तीनों शरीरों से संग हो गया है - दृ० : घटाकाश-महाकाश ४. विकार भ्रान्ति = जगत कारण परमात्मा/ब्रह्म का ये जगत विकार है - दृ० : रज्जु-सर्प ५. कारण रूप परमात्मा से जगत भिन्न एवं सत्य है = दृ० : स्वर्ण और आभूषण १. **भेद भ्रान्ति** - बिम्ब और प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त से भेद भ्रान्ति की निवृत्ति कर लेनी चाहिये। ईश्वर और जीव वास्तव में अभिन्न हैं उनमें भेद मानना भ्रमवश ही है। जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब सूर्य में कल्पित हैं, अपेक्षाकृत हैं पर वास्तव में दोनों एक ही हैं। जैसे दर्पण में हमारा प्रतिबिम्ब पड़ता है तो प्रतिबिम्ब की अपेक्षा से हमारा मुख बिम्ब कहलाता है पर दर्पण हटाने पर प्रतिबिम्ब और बिम्ब दोनों ही नहीं हैं क्योंकि प्रतिबिम्ब नहीं है तो हमें बिम्ब भी क्यों कहेंगे। ऐसे ही विद्या-अविद्या उपाधि में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब क्रमशः ईश्वर और जीव कहलाते हैं अतः विद्या-अविद्या माया उपाधि हटाने पर एक ब्रह्म ही शेष रहेगा। कारण-कार्य उपाधि से ब्रह्म ही ईश्वर और जीव कहलाता है। **सुषुप्ति** कारण उपाधि से चेतन आत्मा का नाम **ईश्वर** तथा **स्वप्न** और **जागृत** उपाधि से चेतन ही **जीव** कहलाता है। कार्य-कारण को छोड़ें तो केवल शुद्ध ब्रह्म ही शेष रह जाता है // जीवात्मा न स्त्री है न पुरुष है, वह सबमें है और सबसे असंग है। ये नाम-रूप जगत भगवान की माया से बना है इन सब देहों में हमारा तुम्हारा जीवात्मा रहता है पर उसका उनसे संग नहीं होता इसलिये वह स्त्री-पुरुष कैसे बन सकता है, स्त्री-पुरुष को वह केवल देखता है। हम जा० स्व० तथा सु० तीनों को देखते हैं और समाधि में सुषुप्ति के भी अभाव को देखते हैं जहाँ केवल हम ही रह गये। सदा रहने वाले को **'भाव'** तथा जो कभी रहता है और कभी नहीं रहता उसे **'अभाव'** कहते हैं क्योंकि जागृत काल तक ही जा० का भाव है, स्वप्न काल तक ही स्व० का भाव है व सुषुप्ति काल तक ही सु० का भाव है पर हमारा तो कभी अभाव न हुआ। अपना अभाव आजतक किसी को अनुभव नहीं हुआ। 'मैं हूँ' - ये भाव है, सत्य है तथा 'मैं देखता हूँ' - ये ज्ञान है ऐसा संशय रहित ज्ञान सबको है। तीनों अवस्थाओं में अपने ज्ञान का सदा भाव है पर एक अवस्था बदलने पर दूसरी अवस्था का अभाव होता रहता है। हमारा ज्ञान सदा एक समान प्रकाशमान रहता है। इस दृश्य संसार का ही भाव और अभाव होता रहता है। अपना अभाव यानि अपनी ज्ञान-दृष्टि का कभी लोप नहीं होता - ये हम सबको अनुभव सिद्ध है। द्रष्टा सत्य है व दृश्य मिथ्या है। हमारी आत्मा (ब्रह्म) में जीव-ईश्वर दोनों ही कल्पित हैं, एक ब्रह्म ही सत्य है //	२.
29	29 May	31				**भगवान राम और सीता, ये ही जगत के माता-पिता हैं व जगत इनकी संतान है।** अपने माता-पिता से संतान भिन्न नहीं होती इसलिये सीताराम की संतान भी सीताराम स्वरूप ही होगी, यही नियम पशु पक्षी वृक्षादि में भी है इसलिये तुलसीदासजी सारे जगत को सीताराम का स्वरूप जानकर प्रणाम करते हैं - 'सियाराम मय सब जग जानी...' // **सीता का स्वरूप** :- राम जगत के ईश्वर हैं और जनक नन्दिनी सीता महामाया शक्ति हैं। सीता जगत की उत्पत्ति, पालन, संहार करती हैं और राम अपना आभास डालकर सीता को सत्ता-स्फूर्ति देते हैं इसके बिना सीता जगत की उत्पत्ति नहीं कर सकती जैसे कठपुतली अपने आप नहीं नाच सकती उसे कोई नचाने वाला चाहिये ऐसे ही मनुष्य पशु-पक्षी आदि भी कठपुतली के समान हैं। सबके भीतर जीवात्मा के रूप में राम बैठे हैं उनकी प्रेरणा से ही दे०इ०म०बु०प्रा० अपना-अपना कार्य करते हैं। जैसे छाया पुरुष के आधीन रहती है इसी प्रकार छाया के समान माया है। सबमें व्यापक जीवात्मा के रूप में बैठे राम पुरुष हैं जिनकी सत्ता से दे०इ०म०बु०प्रा० अपना-अपना काम कर रहे हैं। छाया पुरुष से उत्पन्न होती है, पुरुष के आधीन रहती है तथा पुरुष में ही समा जाती है ऐसे ही ये संसार सीता का परिवार है, राम की सत्ता-स्फूर्ति पाकर ही सीता जगत की उत्पत्ति करती है पालन करती है और फिर राम में ही सम्पूर्ण जगत सहित सीता भी लय हो जाती है। राम जल हैं तो सीता लहर हैं, कहने को जल और लहर भिन्न हैं पर विचार करने पर वास्तव में दोनों अभिन्न हैं // **राम का स्वरूप** :- 'राम' ये नाम तो सीता है पर इसका का अर्थ सच्चिदानंद ब्रह्म है - राम और सीता में ऐसा	

						ही सम्बन्ध है जैसे जल और लहर में । इससे मालूम होता है कि ये नाम जो लहर है जिसका आँखों से दिखाई पड़ने वाला रूप व जो वाणी से कहा जाता है ये कथन मात्र है पर वास्तव में ये जल से अभिन्न ही हैं। इसी प्रकार सीताराम का स्वरूप है। अनेकों लहरों के समान ये जगत सीता का स्वरूप है और जलरूप राम एक है। विचार करने पर सीता का स्वरूप ये संसार रूपी लहरें जलरूप राम से भिन्न नहीं हैं। इस प्रकार सीताराम का जो अभेद है एक रूपता है वही वास्तविक ज्ञान है। सीताराम भिन्न नही हैं, इन्हीं को लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शंकर एवं राधा-कृष्ण कहते हैं - ये दोनों एक ही हैं, इस प्रकार से इनका एकत्व है ।।	
30	30 May	50				// अन्नपूर्णोपनिषद // **पंच भ्रम** १. भेद भ्रान्ति = जीव-ईश्वर का भेद - दृ० : बिम्ब-प्रतिबिम्ब २. कर्तृत्व-भोक्तृत्व भ्रान्ति = आत्मा कर्ता-भोक्ता है - दृ० : स्फटिकमणि और लाल फूल ३. संग भ्रान्ति = जीव का तीनों शरीरों से संग हो गया है - दृ० : घटाकाश-महाकाश ४. विकार भ्रान्ति = कारणरूप परमात्मा/ब्रह्म का ये जगत विकार है - दृ० : रज्जु-सर्प ५. कारण रूप परमात्मा से जगत भिन्न एवं सत्य है = दृ० : स्वर्ण और आभूषण १ **भेद भ्रान्ति** - **'जीव-ईश्वर का भेद है'** - ये भ्रान्ति है । बिम्ब और प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त से भेद भ्रान्ति की निवृत्ति कर लेनी चाहिये। ईश्वर और जीव वास्तव में अभिन्न हैं उनमें भेद मानना भ्रमवश ही है। जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब सूर्य में कल्पित हैं, अपेक्षाकृत हैं पर वास्तव में दोनों एक ही हैं। ऐसे ही विद्या-अविद्या उपाधि में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब क्रमशः ईश्वर और जीव कहलाते हैं अतः विद्या-अविद्या माया उपाधि हटाने पर एक ब्रह्म ही शेष रहेगा। कारण-कार्य उपाधि से ब्रह्म ही ईश्वर और जीव कहलाता है। जीव और ईश्वर का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है २ **कर्तृत्व-भोक्तृत्व भ्रान्ति** - हम आप आत्मा है पर जीव को भ्रान्ति है कि **'हम कर्ता-भोक्ता हैं'** - दृ० : स्फटिक मणि और लाल फूल - फूल की लालिमा से स्फटिक मणि लाल दिखाई पड़ती है पर फूल हटाने पर मणि उज्ज्वल ही दीखती है। हमारी आत्मा दे०इ०म०बु० के पास है अतः इनका आभास हमारी आत्मा में पड़ता है जिससे इनके धर्म आत्मा में मालूम पड़ते हैं। गाढ़निद्रा और समाधि में दे०इ०म०बु० नहीं हैं तो आत्मा में कोई कर्म नहीं मालूम पड़ते तब शुद्ध आत्मा ही रहता है अतः इस अन्वय-व्यतिरेक से जान लेना चाहिये कि आत्मा में कोई कर्म नहीं है तथा आत्मा दे०इ०म०बु० सबसे अलग इनका द्रष्टा-साक्षी है ३ **संग भ्रान्ति** - **'जीव का तीनों शरीरों से संग हो गया है'** - ये भ्रान्ति है - दृ० : घटाकाश-महाकाश - जैसे आकाश का सम्बन्ध घट-मठ किसी से नहीं होता और वह वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत, आदि सबको रहने की जगह देता है परन्तु सबसे असंग रहता है ऐसे ही आत्मा सबमें रहता है पर आकाश की भाँति तीनों देहों से असंग है क्योंकि आत्मा आकाश से भी सूक्ष्म और महान है। हमारा **आत्मा** - **चेतनरूपी आकाश**, जड़ भूताकाश के भीतर भी व्यापक है। आत्मा से ही आकाश उत्पन्न हुआ है पर आत्मा की तो उत्पत्ति हुई नहीं है, आत्मा अजर, अमर, अविनाशी व सत्य है। व्यापक आत्मा ही सच्चि० स्वरूप ब्रह्म है व हम नाम-रूप जगत से असंग उसके द्रष्टा-साक्षी हैं ४ **विकार भ्रान्ति** - **'कारणरूप परमात्मा का ये जगत विकार है'** ये भ्रान्ति है - दृ० : रज्जु-सर्प - ये जगत ब्रह्म का विवर्त एवं माया का परिणाम है। ब्रह्म निर्विकार है, जिस प्रकार दूध का दही में परिवर्तन विकार है इस प्रकार जगत ब्रह्म का विकार नहीं है अपितु विवर्त है, अपने स्वरूप को न त्याग कर दूसरे स्वरूप में दिखाई पड़ने को विवर्त कहते हैं जैसे मंद अन्धकार में रज्जु ही सर्प के रूप में दिखाई पड़ती है यानि रज्जु अपना स्वरूप छोड़े बिना ही सर्परूप में दिखाई पड़ती है तथा रज्जु का ज्ञान होने पर सर्प का नाश हो जाता है ऐसे ही ये जगत ब्रह्म का विवर्त है, परिणाम या विकार नहीं ५ **परमात्मा से जगत भिन्न एवं सत्य है भ्रान्ति** - दृ० : स्वर्ण और आभूषण - सभी आभूषण सोने से बनते हैं इसलिये आभूषण सोने से अलग नहीं हैं ऐसे ही स्वर्णरूप भगवान हैं व ये संसार आभूषणरूप है। भगवान से ही ये संसार उत्पन्न होता है, भगवान में ही रहता है फिर भगवान में ही लीन हो जाता है अन्त में एक भगवान ही शेष रहते हैं। स्वर्ण से न तो आभूषण भिन्न हैं और न सत्य ही हैं ऐसे ही ये जगत न सत्य है और न भगवान से भिन्न ही है ।।	संपूर्ण .३
31	31 May	38				// सरस्वतीरहस्योपनिषद // **संसार में ५ अंश हैं** *'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकं, आद्य त्रयं ब्रह्म रूपं जगत रूपं ततो द्वयं'* **'अस्ति-भाति-प्रिय'** का अर्थ होता है **'सत्-चित्-आनंद'**, ये **ब्रह्म** का स्वरूप है तथा **'नाम-रूप' जगत** का स्वरूप है इनसे अधिक कुछ भी नहीं है। **अस्ति** माने **'है'** होता है, जो तीनों काल में है, सदा-सर्वदा है अर्थात् जो सब देश-काल-वस्तु में है उसी को अस्ति कहते हैं। **भाति** का अर्थ है **'चिद'** अथवा प्रकाश जो दो प्रकार का होता है :- १ ***प्रकाशरूप*** - सूर्य, चन्द्र, तारागण, विद्युत और अग्नि - ये पाँच जड़ ज्योतियाँ हैं २ ***द्रष्टारूप*** - अनंत अखण्ड **'ज्ञानप्रकाश'** है जो पाँचों जड़ ज्योतियों का प्रकाशक है ऐसा परम प्रकाशरूप भगवान है, इस सदा रहने वाले प्रकाश का उदय-अस्त नहीं होता इसलिये उन्हें भाति या चिद कहते हैं। **प्रिय** का अर्थ है आदि अंत रहित **'आनंद'**, ये तीनों सदा रहते हैं। स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत आदि नाम-रूप को ही जगत अथवा माया कहते हैं। ये नाम-रूप सदा नहीं रहते, ये सदा चलते रहते हैं। इन शरीरों के भीतर इ०म०बु०प्रा० हैं ये भी सदा चलते रहते हैं। ये जगत सच्चिदानंद ब्रह्म में उत्पन्न होता है, ब्रह्म में रहता है और ब्रह्म में ही समा हो जाता है फिर एक ब्रह्म ही शेष रहता है। जिसमें ये जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है व जिसमें लय हो जाता है उसे ही एक अद्वितीय सच्चिदानंद ब्रह्म कहते हैं ।। सृष्टिक्रम :: सृष्टि के आदि में भगवान ही एक अकेले थे, उस परम्ब्रह्म परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से सबसे पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से → अग्नि, अग्नि से → जल, जल से → पृथ्वी, पृथ्वी से → औषधियाँ, औषधियों से → अन्न, अन्न से → वीर्य → स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि शरीर ।। आत्मा-परमात्मा तो एक है। सभी शरीरों में जीवात्मा बैठा है जिसका जन्म-मरण नहीं होता क्योंकि आत्मा अजन्मा है, जिसका जन्म नहीं होता उसकी मृत्यु भी नहीं होती, जन्म ही मृत्यु का कारण है। ये शरीर जन्मते हैं इसलिये मरते हैं अतः इन शरीरों के विपरीत क्रम से लय हो जाने पर अन्त में एक अजन्मा ब्रह्म ही शेष रहता है // दृ० : ब्रह्म 'अस्ति-भाति-प्रिय' रूप से घट में समाया है अतः 'घट है' 'घट भासता है' व 'घट प्रिय है', जब घट टूटने पर माटीरूप हो जायेगा तो घट का नामरूप चला गया पर माटी/पृथ्वी है, पृथ्वी भासती है व पृथ्वी प्रिय है यानि घट का 'अस्ति-भाति-प्रिय' अब पृथ्वी में है, ऐसे ही पृथ्वी का नामरूप जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में व आकाश का नामरूप ब्रह्म में लय हो जाने पर एक अकेला ब्रह्म ही शेष रहेगा // *'अस्ति-भाति-प्रिय' रूप से ब्रह्म सभी नाम-रूप में समाया है अतः सभी नामरूपों* (स्त्री-पुरुष, वृक्ष-पर्वतादि → पृथ्वी → जल → अग्नि → वायु → आकाश) *के लय होने पर 'अस्ति-भाति-प्रिय' रूप से ब्रह्म ही शेष रहता है।*	
32	32 May	30				**भगवान राम से भ्राता लक्ष्मण के सविनय प्रश्न** // १. **ज्ञान वैराग्य** व **माया** का क्या स्वरूप है ? २. **भक्ति** का क्या स्वरूप है जिसके वश में होकर आप भक्त पर दया करते हैं ? ३. **ईश्वर** और **जीव** किसे कहते हैं व इनमें क्या भेद है ? ये सब आप मुझे कहें जिससे मेरी आपके चरणों में रति हो व मेरे शोक मोह भ्रम का नाश हो ।। **भगवान राम का उपदेश** हे तात् ! तुम मन बुद्धि व चित्त लगा कर सावधान मन से इनका स्वरूप संक्षेप में सुनो ::- **माया** **मैं-मेरा व तू-तेरा**, यानि अपने शरीर में 'मैं'-पना और सम्बन्धियों के शरीर में 'मेरा'-पना बस इसी का नाम माया है तथा मैं और मेरे सम्बन्धियों में ही प्रीति है। माया ने सम्पूर्ण जगत को अपने वश में कर रखा है, जहाँ तक ५ ज्ञानेन्द्रियाँ व ५ कर्मेन्द्रियाँ एवं इनके विषय हैं, जहाँ तक मन जाये तथा जो कुछ देखने सुनने व विचारने में आता है यानि जितना भी दृश्य जगत है वह सब माया का स्वरूप है। **अब उस माया का तुम भेद सुनो :-** 'सत्-रज-तम' ३ गुण वाली माया **विद्या** (सत्व प्रधान) और **अविद्या** (मलिन सत्व प्रधान) दो रूप धारण करती है। विद्या ईश्वर की तथा अविद्या जीव की पत्नि बनती है। अविद्यारूप माया बड़ी दुष्ट है, वह अपने स्वामी जीव को भवकूप अथवा जन्म-मरण के चक्र में डाल देती है जिससे वह बाहर नहीं निकलना पाता तथा विद्यारूप माया ईश्वर की पत्नि है जो प्रभु की प्रेरणा से जगत की रचना करती है उसी प्रकार जैसे बिजली की प्रेरणा से मशीनें चलती हैं उसमें अपना निजी कोई बल नहीं है। अविद्या अपने पति को अपने वश में रखती एवं दुःख देती है जबकि विद्या पति की आज्ञा में रहकर, ईश्वर की सत्ता-स्फूर्ति पाकर स्वयं ही जगत के रूप में परिणित हो जाती है - इस प्रकार ये चराचर जगत ईश्वर की माया ने बना दिया है। ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है। जब कभी जीव भगवान के कृपापात्र संतों की शरण में जाता है तो संत लोग जीव को उसका वास्तविक स्वरूप बता देते हैं। माया छाया के समान दिखाई पड़ती है पर सत्य नहीं है। पुरुष सत्य है द्रष्टा ज्ञानवान है पर छाया दृश्य और जड़ है ऐसे ही ईश्वर-जीव ज्ञानवान हैं और माया जड़ एवं झूठी है। स्वप्न का संसार दिखाई तो पड़ता है पर झूठा होता है, वह माया है। रज्जु में सर्प दिखाई तो पड़ता है पर झूठा है अतः लक्ष्मण जहाँ तक इ०म०बु० जायें वे सब दृश्य होने से माया है - इस प्रकार भगवान ने माया का स्वरूप बताया ।।	A
33	33 May	34				वाराहोपनिषद एवं योगवाशिष्ठ // **ज्ञान की ७ भूमिकायें** // शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसी, सत्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभावना, तुरीयगाह ।। १. शुभेच्छा - शुभ स्वरूप आत्मा/परमात्मा का है उसको जानने व पाने की इच्छा को ही शुभेच्छा कहते हैं जिसके	

			⊕	⊕	⊕	लिये विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पदा व मुमुक्षुता अभीष्ठ साधन हैं **विवेक** - 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' इस प्रकार का निश्चय करना यानि नित्य-अनित्य का विवेक करना तथा मिथ्या जगत से उपरामता/वैराग्य होना व सत्य से अनुराग होना विवेक है **वैराग्य** - संसार के विषयों से विरक्ति अथवा उपरामता वैराग्य है **षट्क सम्पदा** - शम (इन्द्रिय निग्रह), दम (मनो निग्रह), उपरम (विषयों से वैराग्य), तितीक्षा (प्रतिकूलता में धैर्य), श्रद्धा (गुरु के वचनों में विश्वास) एवं समाधान (मन का परम शान्त हो जाना ही समाधान है) मुमुक्षुता - जैसे प्यासे को पानी की ही तीव्र इच्छा होती है वैसे ही भगवत् प्राप्ति की तीव्र इच्छा को मुमुक्षुता कहते हैं, मोक्ष का जिज्ञासु त्रिलोकी का राज्य भी अस्वीकार कर देता है २. विचारणा - मुमुक्षु के विवेक वैराग्य आदि चतुष्ट्य साधन सम्पन्न होकर गुरु की शरण में जाने पर और दण्डवत् करके अपनी मोक्ष पाने की इच्छा प्रकट करने पर गुरु अर्थ सहित वेद मंत्रों के द्वारा ब्रह्म, माया, ईश्वर, जीव, जगत तथा सत्-असत् आदि का स्वरूप निरूपण करते हैं। गुरु **'श्रुति-युक्ति-अनुभूति'** द्वारा शिष्य को ब्रह्म विद्या/ज्ञान का उपदेश करते हैं, यह **'श्रवण'** है। ब्रह्म सत्य है व जगत मिथ्या है = जा०-स्व०-सु० तीनों माया मात्र हैं इन्हें ज्ञान नहीं है पर ४था जो इन तीनों को देखता है वह ब्रह्म है। समाधि में जा०-स्व०-सु० तीनों नहीं हैं पर जो ४था यानि तुरीय है वही सत्य है, वही ब्रह्म है और हे ! जीव 'तत्त्वमसि' - वही तू है इसलिये 'अहं आत्मा ब्रह्म' ।। ३. तनुमानसी - श्रवण के पश्चात् **'मनन एवं निधिध्यासन'** तनमानसी है इस भूमिका में मन कृश हो जाता है व संसार से आस्था हट जाती है - जगत मिथ्या है तथा ब्रह्म ही सत्य है ऐसा दृढ़ निश्चय होता है ४. सत्वापत्ति -*ब्रह्मविद्* :: बारम्बार 'श्रवण मनन निधिध्यासन' के बाद पूर्ण वैराग्य होने पर सत्वापत्ति यानि ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है तथा वह ज्ञानवान हो जाता है, जगत स्वप्नवत् भासता है अतः इस भूमिका में ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी = 'अहं आत्मा ब्रह्म' *(अथर्ववेद)*, 'तत्त्वमसि' *(सामवेद)*, 'प्रज्ञानं आनंदं ब्रह्म' *(ऋगवेद)*, 'अहं ब्रह्मास्मि' *(यजुर्वेद)* ।। स्त्री-पुरुष ब्राह्मण-क्षत्रिय गृहस्थ-वानप्रस्थ आदि स्थूलदेह के, काम-क्रोध सुख-दुःख मान-अपमान सूक्ष्मदेह के तथा प्रिय मोद प्रमोद निद्रा व आलस्य कारणदेह के धर्म हैं। **अहं का शुद्ध अर्थ ब्रह्म होता है** अतः मैं स्थूल-सूक्ष्म-कारण देह नहीं हूँ - मैं तो निर्विकार, इन सबसे अलग, इनका द्रष्टा-साक्षी शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ। इस ज्ञान से संसार में सत् एवं सुखबुद्धि समाप्त हो जाती है ५. असनशक्ति -*ब्रह्मविदवर्* :: इस भूमिका में संसार में कोई आसक्ति नहीं रह जाती। दे०इ०म०बु० से देखना-सुनना, चलना-फिरना, लेना-देना, खाना-पीना परिवार का पालन-पोषण आदि सभी कर्मो को करता हुआ भी वह संसार से विरक्त रहता है - निद्रा के समान ६. पदार्थाभावना -*ब्रह्मविदवरियान* :: इस भूमिका में पदार्थों का अभाव हो जाता है व स्वरूप/समाधि में स्थित हो जाते हैं - गाढ़ निद्रा के समान ७. तुरीयगाह -*ब्रह्मविदवरिष्ठ* :: इस भूमिका में अखण्ड समाधि लग जाती है और वह ब्रह्म में लीन हो जाता है यद्यपि प्रारब्ध पर्यन्त ये शरीर दिखाई पड़ता रहता है - प्रगाढ़ निद्रा के समान ।।	
34	34 May	28	⊕	⊕	⊕	**भगवान राम से भ्राता लक्ष्मण के सविनय प्रश्न** // १. **ज्ञान वैराग्य** व **माया** का क्या स्वरूप है ? २. **भक्ति** का क्या स्वरूप है जिसके वश में होकर आप भक्त पर दया करते हैं ? ३. **ईश्वर** और **जीव** किसे कहते हैं व इनमें क्या भेद है ? ये सब आप मुझे कहें जिससे मेरी आपके चरणों में रति हो व मेरे शोक मोह भ्रम का नाश हो ।। **भगवान राम का उपदेश** हे तात् ! तुम मन बुद्धि व चित्त लगा कर सावधान मन से इनका स्वरूप संक्षेप में सुनो ::- माया **मैं-मेरा** व **तू-तेरा** बस इतनी ही माया है। ये माया बिना सामग्री के जगत बना देती है इसलिये ये जगत झूठा है - इन्द्रजालवत्, स्वप्नवत् । स्वप्न में जागृत नहीं रहता, जागृत में स्वप्न नहीं रहता और निद्रा में जागृत स्वप्न दोनों नहीं रहते इसलिये इनको माया कहते हैं, ये दिखाई तो पड़ते हैं पर रहते नहीं हैं। ये चराचर जगत मन का विलास है, जब तक मन है तब तक जगत है, निद्रा में मन नहीं रहता तो जगत भी नहीं रहता ।। ज्ञान ज्ञान असीम है वह स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत सबमें समाया हुआ है, आदि-अन्त रहित वह सबके भीतर बैठकर सबकी आँखों से देख रहा है, उसे ही **अदृष्टो-द्रष्टा** कहते हैं जो देखता है पर दिखाई नहीं देता और जो दिखाई देता है वह माया है, माया को ज्ञान नहीं है। सब देहों में बैठकर देखने वाला द्रष्टा ही ब्रह्म है तथा दृश्य माया है। द्रष्टा 'ज्ञान' कण-कण में समाया है हमारा तुम्हारा स्वरूप ज्ञान है व शरीर माया है इसलिये सबमें उस व्यापक 'ज्ञान' को देखना चाहिये। हम आप जा०-स्व०सु० को देखते हैं, सबके शरीर माया हैं व उनमें बैठा द्रष्टा एक अद्वितीय परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। आकाश के समान व्यापक ब्रह्म का स्वरूप सच्चिदानंद है। दृश्यमान देह में बाल्य-युवा-वृद्धावस्थायें होती हैं पर द्रष्टा में ये अवस्थायें नहीं हैं, देखने वाला एक अद्वितीय अदृष्टो-द्रष्टा **'ज्ञान'** है तथा सभी देहों में वही बैठकर देख रहा है अतः हमारा तुम्हारा स्वरूप **ज्ञान-स्वरूप** द्रष्टा-साक्षी है ।। वैराग्य 'अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व' - इन आठों सिद्धियों को तृण समान जानकर त्यागने वाला ही भगवान को पाने में समर्थ हो सकता है। इन सिद्धियों के प्राप्त करने वाला अभिमान के कारण भगवान को नही प्राप्त कर सकता। भगवान राम 'विष्णु' के अवतार है अतः वह जो कहते हैं वह परम सत्य है।	B
35	35 May	35	⊕	⊕	⊕	**अज्ञान के कारण परमात्मा/आत्मा का स्वरूप ढका हुआ है**, अज्ञान से ज्ञान ढका हुआ है। हे अर्जुन ! मैं अपनी योगमाया से सम्यक प्रकार से आवृत हूँ इसलिये जीव को नहीं दिखाई पड़ता। जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार में सब वस्तुऐं ढक जाती हैं और सूर्योदय होने पर अन्धकार के नाश होने पर सब कुछ यथावत् स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है ऐसे ही ज्ञान होने पर जीवात्मा को अपना स्वरूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। **हमारा स्वरूप 'ज्ञान' ही है** क्योंकि हम दिन-रात को जानते हैं, जो भी दृश्य है वह अज्ञान/माया/अन्धकार का कार्य है। इस अज्ञान/अन्धकार से अपना स्वरूप भी ढका हुआ है। जा०-स्व०-सु० इतनी ही माया/अज्ञान/अन्धकार है - अपने स्वरूप को ढकने वाला । हम जा०-स्व०-सु० को देखते है पर ये तीनों न अपने को जानते हैं और न दूसरे को ही जानते हैं। ज्ञान तो हमारा अपना स्वरूप है अतः उसे हमें प्राप्त नहीं करना है। आत्मा तो सच्चिदानंद अपना स्वरूप है इसलिये सत्-चित्-आनंद की प्राप्ति नहीं करनी और 'असत्-जड़-दुःख' अपने में है नहीं तो इनकी निवृत्ति नहीं बनती। जो अपने को प्राप्त हो उसका तो निषेध किया जा सकता है पर ये 'असत्-जड़-दुःखरूपता' यानि 'मृत्यु-अज्ञान-दुःख' - अपनी आत्मा में है ही नहीं तो हटाना किसका बनता है परन्तु भ्रम से ये मालूम पड़ता है कि मृत्यु-अज्ञानता-दुःख मुझे प्राप्त हो गया है अतः इसी अज्ञान यानि भ्रम की निवृत्ति करना जरूरी है तो यही भगवान समझा रहे हैं कि हे अर्जुन ! जा०-स्व०-सु० बस इतनी ही माया है उसे ज्ञान नहीं है अतः **'जो जा०-स्व०-सु० को जानता है वह ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ'** - ऐसा जो जानता है वही **ज्ञानी** है, सब बन्धनों से वह मुक्त हो जाता है, बन्ध कभी आया नहीं जीव को - अज्ञान का किया हुआ ये बन्ध है इसलिये ज्ञान से निवृत्त हो जाता है । वेद कहता है कि जीव का स्वरूप **'सच्चिदानंद'** है। सच्चिदानंद की प्राप्ति नहीं बनती क्योंकि वह तो अपना स्वरूप ही है तथा वह तो नित्य प्राप्त है किन्तु भ्रमवश उसकी अज्ञान से अप्राप्ति तथा ज्ञान से प्राप्ति हो जाती है। हमारा ज्ञान एक अखण्ड है, सब देश-काल-वस्तु को हम जानते हैं। जा०-स्व०-सु० में हम रहते हैं इसलिये **'सत्'** हैं, जा०-स्व०-सु० को हम जानते हैं इसलिये हम **'चित्'** हैं, इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध से जिस विषयानंद की प्रतीति होती है वह हमारी **'आनंद'** स्वरूप आत्मा का ही प्रतिबिम्ब होता है। बुद्धि में जो ज्ञान है वह हमारी आत्मा का ही थोड़ा ज्ञान है तथा इस शरीर में सत्यता भी हमारी आत्मा की ही सत्यता है। इस प्रकार जा०-स्व०-सु० का प्रकाशक ब्रह्म है जो सदा एकरस रहता है व तीनों अवस्थाओं का निर्गुण-गुणातीत-साक्षी **'चेतन'** है। सतगुण से → जागृत, रजोगुण से → स्वप्न तथा तमोगुण से → सुषुप्ति बनी है इन्हें ज्ञान नहीं है पर हमारा स्वरूप स्वयं प्रकाशरूप है।	सुंदर
36	36 May	26	⊕	⊕	⊕	// **भगवान राम का उपदेश** // हे तात् ! तुम मन बुद्धि व चित्त लगा कर सावधान मन से संक्षेप में इनका स्वरूप सुनो ::- ज्ञान ज्ञानी वह है जो चराचर जगत में एक परम् ब्रह्म परमात्मा को ही देखता है। ब्रह्म व्यापक है, सच्चिदानंदघन है व सबके हृदय में विराजमान है पर क्योंकि जीव उसे नहीं जानता इसलिये उसे दुःख और बन्धन है वैराग्य 'अणिमा/सूक्ष्म, महिमा/विशाल, लघिमा/हल्का, गरिमा/भारी, प्राप्ति, प्राकाम्य/मन चाहे स्थान पर गमन, ईशत्व/ईश्वर भाव, वशित्व/वशीकरण शक्ति' - इन आठों सिद्धियों को तृण समान जानकर त्यागने वाले को ही वैराग्यवान् कहते हैं। परम् वैराग्यवान भक्त के लिये इन सिद्धियों का कोई महत्व नहीं है। स्त्री, पुत्र व धन को महत्व न देना ही वैराग्य है जीव अधिष्ठान ब्रह्म + कल्पित अविद्या माया + उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब - इतना **'जीव'** संज्ञा का वाच्यार्थ है। वह न अपने (प्रतिबिम्ब स्वरूप) को जानता है और न ब्रह्म, ईश्वर अथवा माया को ही जानता है ईश्वर अधिष्ठान ब्रह्म + कल्पित विद्या माया + उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब - इतना **'ईश्वर'** संज्ञा का वाच्यार्थ है। जो सबके ऊपर है, बन्ध-मोक्ष देने वाला है तथा माया का प्रेरक है वह ईश्वर है। वह अपने (प्रतिबिम्ब स्वरूप) को जानता है, ब्रह्म, माया , जीव व उसके कर्मों को जानता है तथा वह ही फल दाता भी है भक्त जिस साधन से प्राणी सुगमता पूर्वक मुझे पा लेता है वह 'भक्ति' है। भगवान के प्रिय एवं कृपा पात्र ब्राह्मणों के चरणों में अत्यन्त प्रीति तथा अपने वर्णाश्रम व पदाधिकार के अनुसार कर्तव्य कर्म एवं धर्माचरण ही भक्ति है। नियम पूर्वक मन से ध्यान, तन से पूजा व वाणी से मेरा जप करना मेरी भक्ति है। गद्गद् वाणी से मेरे गुणों का गान करते हुए नेत्रों से अश्रु बहें तथा काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि	C

						जिनके नष्ट हो गये हों - मैं सदैव उनके वश में रहता हूँ। जैसे प्यासे को पानी के सिवाय कुछ अच्छा नहीं लगता ऐसे ही भक्त को भगवान के अतिरिक्त अन्य कुछ अच्छा नहीं लगता ।।	
37	37 May	30				सभी ग्रन्थ भगवत् तत्त्व का निरूपण कर रहे हैं। **भगवान के दो रूप हैं - ससा० और निनि०** इनके स्वरूप निरूपण के लिये हनुमानजी का भगवान राम से विनम्र निवेदन - 'त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः राम मुक्तये, अनायासेन येनाहं मुच्येयं भव बन्धनात्, कृपया वदुमे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्' // ब्रह्म एक अद्वितीय है और माया से, अपनी इच्छा शक्ति से वह ४ रूप धारण कर लेता है - इन्द्रजालवत् । जैसे नट नाटक में खेल करता है तो जैसा खेल दिखाना हो वैसे ही बहुत रूप बना लेता है तथा अपना वास्तविक रूप छिपा लेता है ऐसे ही भगवान लीला के लिये बहुत रूप बना लेते हैं। भगवान सम्पूर्ण माया के पति हैं अतः वह सारा विश्वरूप धारणकर लेते हैं, माया से भगवान **'जा०-स्व०-सु०-तुरीय'** चार रूप धर लेते हैं। विद्वान ४रों रूपों को भगवान का ही रूप जानकर प्रणाम करते हैं, वे स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, वृक्ष-पर्वत आदि अनेक रूपों में एक भगवान को पहचान लेते हैं। जगत में जड़ और चेतन दो ही वस्तु हैं - दिखाई पड़ने वाला ससा० **'जड़'** तथा सबको देखने वाला निनि० **'चेतन'** । सारा जगत जड़ है तथा उसमें निनि० रूप से बैठकर चेतन भगवान ही देख रहे हैं, जड़-चेतन दोनों भगवान के ही रूप है /// नमोस्तुनन्ताय सहस्त्र मूर्तये, सहस्त्र पादाक्षि सिरोरुबाहवे । सहस्त्र नामने पुरुषाय सास्वते, सहस्त्र कोटि युग धारणे नमः /// हे भगवान ! सर्वरूप में अनेक रूपधारी तुम्हीं हो । हे प्रभु ! तुम्हीं माता-पिता बन्धु-सखा पत्नि-पुत्र गुरु-शिष्य के रूप में हो, अन्न धन वस्त्रादि भी तुम्हारे ही रूप हैं। हे देवों के देव, मेरे स्वामी 'जा०-स्व०-सु० और तुरीय' के रूप में भी तुम्हीं हो। दिखाई पड़ने वाला *सगुण-साकार* **'जा०-स्व०-सु०'** तथा देखने वाला *निर्गुण-निराकार* **'तुरीय'** - सब तुम्हीं हो, तुमसे भिन्न कुछ भी नहीं है अतः हमारे तुम्हारे दृश्यमान ससा० जड़ शरीर तथा इनमें बैठकर देखने वाला निनि० चेतन दोनों ब्रह्म ही है अर्थात् दृश्य भी ब्रह्म है और द्रष्टा भी ब्रह्म है, दृश्य ससा० है और द्रष्टा निनि० है इसलिये ज्ञानीजन सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार दोनों को नमस्कार करते हैं। जड़ भी वही है और चेतन भी वही है, भगवान से भिन्न कुछ है ही नहीं इसलिये भगवान दृष्टि, राम दृष्टि, एक ही दृष्टि रखनी चाहिये - **सर्वं ही एतद् ब्रह्म** //	
38	38 May	59				सृष्टि के आदि में एक एकाकी अद्वितीय भगवान ही थे। इन्हीं भगवान को ब्रह्म एवं तत्त्व कहते हैं। वे जो एक अद्वितीय ज्ञान है उसी को ब्रह्म, परमात्मा व भगवान कहते हैं वही एक अद्वितीय हैं। उनमें माया का प्रादुर्भाव हुआ जैसे पुरुष में छाया अथवा रज्जु में सर्प प्रतीत होने लगता है, मंद अंधकार में रज्जु ही सर्प के रूप में दिखाई पड़ने लगती है पर ये झूठी होती है फिर उस माया ने शुद्ध सत्व गुण की प्रधानता से **'विद्या'** और मलिन सत्वगुण की प्रधानता से **'अविद्या'** का रूप बना लिया। इन विद्या-अविद्या माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ गया। विद्या-माया में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब का नाम ईश्वर पड़ा वो सर्वज्ञ हुआ व जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करने वाला हुआ और अविद्या-माया में पड़ा ब्रह्म के प्रतिबिम्ब का नाम जीव हुआ, वह अल्पज्ञ हुआ। ब्रह्म सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण पुरुष हैं। इस प्रकार अधि०ब्रह्म, झूठी विद्यामाया व उसमें ब्रह्म का प्रति० की मिलकर **'ईश्वर'** तथा अधि०ब्रह्म, झूठी अविद्यामाया व उसमें ब्रह्म का प्रति० की मिलकर **'जीव'** संज्ञा हुई और फिर इन दोनों ने सृष्टि की। **ईश्वर की सृष्टि** :- ईक्षण से लेकर प्रवेश पर्यन्त ईश्वर की सृष्टि है, ईश्वर इच्छा करता है कि बहुत हो जाउँ और वह अनेक रूप हो जाता है, इच्छा मात्र से ईश्वर की सृष्टि हो जाती है - वह स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत आदि सब शरीर बना देता है। शरीरों का नाम ही संसार है फिर वह उनमें जीवरूप से सारे संसार में प्रविष्ट हो गया जिससे मृतवत् शरीर व्यवहार करने लगे यानि चलने-फिरने लगे, देखने-सुनने व बोलने लगे क्योंकि ये शरीर तो जड़ हैं मृत समान है इनमें प्रविष्ट जीव ही आँख-कान-वाणी से क्रमशः देखता सुनता बोलता है। जीव के निकलने पर शरीर फिर मुर्दा का मुर्दा है अतः भगवान ही सब शरीरों में जीवरूप से प्रविष्ट हैं अर्थात् जीव भगवान का ही रूप है। **जीव की सृष्टि** :- जा० स्व० सु० बन्ध और मोक्ष' इतना संसार जीव ने कल्पना कर दिया। जीव अपना स्वरूप न जानने के कारण बन्ध का अनुभव करता है और ईश्वर एवं गुरु की कृपा से जब ब्रह्म को जानता है तो ये मुक्त हो जाता है व जन्म-मरण से छूट जाता है इसलिये ईश्वरपना और जीवपना भी कल्पना मात्र है // अब तीन भाव हो गये, नि०नि०-**ब्रह्म**, स०नि०-**ईश्वर /जीव**, स०सा०-**राम कृष्ण** अवतार/ **मनुष्य** पशु-पक्षी । सच्चिदानंद ब्रह्म निनि० है, विद्या-अविद्या माया के सहित ब्रह्म सनि० हो गया यानि सत्वगुण की प्रधानता से ईश्वर और मलिन सत्वगुण की प्रधानता से जीव हो गया। सनि० में सत्व-रज-तम गुण तो आ गये पर अभी शरीर नहीं हैं। जब ईश्वर के राम-कृष्ण आदि अवतार तथा जीव के स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि शरीर प्रकट हो गये तो ईश्वर और जीव स०सा० हो गये // व गुणों के साथ रहने व आकार धारण करने को स०सा० कहते हैं ईश्वर और जीव दोनों का ही गुण और आकारों से संग नहीं होता। साथ रहने से हम आकार अथवा गुण नहीं बन जायेंगे, इसी प्रकार से उपाधिकृत नाम पड़ते जाते हैं पर नाम से पुरुष अलग ही रहता है अतः हमारा नाम आगन्तुक है, उदा० - पुरुष का पति नाम पत्नि ने रखा है और पत्नि ने छोड़ दिया तो पुरुष तो ज्यों का त्यों ही रहेगा अतः हम नाम-रूप से परे हैं, नाम-रूप तो शरीरों में हैं हम तो अलग के अलग जीव है शरीर नहीं हैं। साक्षात् भगवान स्वयं ही जीवरूप से प्रविष्ट हुए हैं सब शरीरों में, शरीर तो बिना सामग्री के माया से बने हैं। ईश्वर की इच्छा ही माया है, माया नाम झूठी चीज़ का है जो दीखती है पर है नहीं। जा०-स्व०-सु० इतनी माया है व इनका द्रष्टा जीव तो सच्चिदानंद ब्रह्म ही है। जीवात्मा न तो स्त्री-पुरुष है न पशु-पक्षी है ये सब दृश्यमान ३३ उ	
39	39 May	35				**गीता २/ १२-१६** // ज्ञानयोग // १२ अर्जुन ! न तो ऐसी बात है कि मैं किसी काल में नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि आगे हम सब नहीं रहेंगे किन्तु जब मेरे तेरे और राजा लोगों के ये शरीर नहीं थे तब भी हमारी तुम्हारी आत्मा थी और जब ये सब नहीं रहेंगे तब भी हमारी तुम्हारी आत्मा रहेगी। आत्मा अजर-अमर है उसका जन्म-मरण नहीं होता ये शरीर ही जन्मते-मरते हैं १३ कौमार्य यौवन व जरा अवस्था शरीर की ही होती है आत्मा की नहीं क्योंकि शरीर ही जन्मते और मरते हैं और मरणोंपरान्त दूसरे देह की प्राप्ति होती है पर आत्मा वैसा ही रहता है। पुराने वस्त्रों की भाँति आत्मा जीर्ण शरीर को त्याग कर नया देह धारण कर लेता है अतः अपने को आत्मा जानना चाहिये शरीर नहीं। आत्मा स्त्री पुरुष नपुंसक बालक वृद्ध ब्राह्मण क्षत्रिय पशु पक्षी सबमें है पर असंग है इसलिये जन्म-मरण के दुःख से तुम मुक्त ही हो १४ अर्जुन ! इन्द्रियों का विषयों से सम्बन्ध होने पर शीत-उष्ण एवं सुख-दुःख होते हैं परन्तु ये आने-जाने वाले हैं अर्थात् दिन-रात की भाँति अनित्य हैं १५ ज्ञान में प्रीति करने वाले अर्जुन ! न सदा सुख रहता और न दुःख ही सदा रहता है, ये आने-जाने वाले हैं इसलिये अर्जुन उन्हें सहन करो, वो धीर पुरुष हैं जो उनसे घबड़ाते नहीं अतः जो धैर्यवान हैं, बुद्धिमान हैं वे अमृतत्त्व के योग्य होते हैं १६ इस संसार में **सत्** और **असत्** दो वस्तुऐं हैं, जो **सत्** है वह **चिद्** भी है और **आनंद** भी है - **ये सच्चिदानंद ब्रह्म का स्वरूप है** तथा जो **असत्** है वह **जड़** भी है और **दुःखरूप** भी है - **वह माया का स्वरूप है**, माया सदा नहीं रहती । जा०-स्व०-सु० असत् जड़ दुःखरूप माया है व आत्मा के विपरीत है। आत्मा सदा रहता है व ज्ञान और सुखरूप है // अर्जुन मैं सर्वज्ञ हूँ और तुम अल्पज्ञ हो अतः मेरे बताने से तुम इस तत्त्व को जान लो। जागृत स्थूल, स्वप्न सूक्ष्म एवं सुषुप्ति कारण-माया है, जा०-स्व०-सु० तीनों कार्य-कारण माया ही है जो असत् जड़ दुःखरूप है तथा इसके विपरीत हमारी आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। जागृत की माया स्वप्न में नहीं रहती, स्वप्न की माया जागृत में नहीं रहती व सुषुप्ति में जा०-स्व० दोनों नहीं रहते अतः वह असत् हैं। इस माया की उम्र २४ घंटे की नहीं है, तीनों २४ घंटे में बदल जाते हैं पर हमारा तुम्हारा आत्मा २४ घंटे रहता है कभी बदलता नहीं है। हम जा० में रहते हैं और जा० को देखते हैं, हम स्व० में रहते हैं और स्व० को देखते हैं, हम सु० में रहते हैं और जा०स्व० के अभाव को देखते हैं यानि हम तीनों में रहते हैं इसलिये सत्रूप हैं, तीनों को देखते हैं इसलिये चिद्रूप हैं और आनंदरूप भी हैं। हमने अपना अथवा अपने ज्ञान का कभी अभाव नहीं देखा । सबको संशय रहित ज्ञान हैं कि मैं तीनों अवस्थाओं में हूँ व तीनों को देखता हूँ अतः **मेरा स्वरूप सच्चिदानंद है** - **'अयं आत्मा ब्रह्म, सो अयं आत्मा', द्रष्टा ब्रह्म है व दृश्य माया हैं**। ये सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान के वचन हैं अतः अपने को सच्चिदानंद ब्रह्म जानो व दृश्यमान जगत को माया जानो - **यही पूर्णज्ञान है** //	
			ज्ञान योग भाग - १				
40	40 May	36				**गीता २/१६** // ज्ञानयोग // अर्जुन ! संसार में **सत्** और **असत्** दो ही वस्तुऐं हैं, सत् उसे कहते हैं जो सदा सब देश-काल-वस्तु में रहता है तथा असत् उसे कहते हैं जो सदा नहीं रहता है। हमारी आत्मा सत् है, सत् का कभी अभाव नहीं होता और असत् का कभी भाव नहीं होता। ये जगत सदा नहीं रहता। अर्जुन ! जागृत स्वप्न में नहीं रहता तो जागृत असत् हो गया, स्वप्न जागृत में नहीं रहता तो स्वप्न असत् हो गया और सुषुप्ति समाधि में नहीं रहती इसलिये वह भी असत् हो गयी। हमारा आत्मा जा०-स्व०-सु० तीनों में रहता है इसलिये सत् है। जा० में स्थूल शरीर व स्वप्न में सूक्ष्म शरीर रहते हैं और सु०-गाढ़ निद्रा में सूक्ष्म शरीर भी नहीं रहते। सुषुप्ति अज्ञान-अन्धकार रूप कारण माया है तथा जा०-स्व० कार्य माया है क्योंकि जा० का स्थूल संसार	

			ज्ञान योग भाग – २	व स्व० का सूक्ष्म संसार सुषुप्ति से उत्पन्न होते हैं परन्तु कार्य-कारण माया से परे हमारा तुम्हरा स्वरूप चेतन आत्मा है । जा०-स्व०-सु० इनों अवस्थाओं में तथा स्थू०-सू०-का० सब शरीरों में वह केवल एक ही साक्षी चेतन आत्मा है। जीवात्मा स्त्री पुरुष नपुन्सक सबमें है, सबसे असंग है शरीर में रहते हुए भी आत्मा का शरीर से संग नहीं होता। आत्मा का अभाव कभी नहीं होता तुम अनुभव करो अर्जुन, तुम तीनों अवस्थाओं में रहते हो पर तीनों अवस्थायें सदा नहीं रहतीं वह २४ घंटे में बदल जाती हैं। जा०-स्व०-सु० तीनों माया मात्र हैं जो होवे नहीं पर दिखाई पड़ती हैं। स्वप्न की भाँति जागृत भी झूठा है जैसे जागृत में स्व० का जगत झूठा है वैसे ही स्वप्न में जा० का जगत झूठा है इसलिये दोनों मिथ्या हैं, एक ब्रह्म ही सत्य है, ब्रह्म सदा रहता है // माया का कार्य होने से, बिना सामग्री से बना ये जगत मिथ्या है – **मायात्वात्**, दृ०- *इन्द्रजालवत्*, ऐसे ही ये ईश्वर की माया है जो बिना सामग्री के क्षण मात्र में अनंत कोटि ब्रह्माण्ड बना देती है इसी वास्ते ये संसार झूठा है ।। 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' क्योंकि दृश्य होने से ये जगत झूठा है द्रष्टा सत्य है – **दृश्यत्वात्**, दृ०-*स्वप्नवत्* ।। आत्मा अधिष्ठान है और जगत अध्यास है – **अध्यासत्वात्**, दृ०-*रज्जु-सर्पवत्* // जो ब्रह्म है वही हमारा आत्मा है, जो आत्मा है वही ब्रह्म है। ये शरीर हमारा स्वरूप नहीं है, स्त्री पुरुष जाति वर्ण नाम रूप आदि सब स्थूल देह में हैं। हमारा तुम्हारा स्वरूप स्थूल-देह से भिन्न है। भूख-प्यास, अंधापन, बहरापन, धर्म-अधर्म, काममम क्रोध लोभ मोह क्षमा भक्ति सब सूक्ष्म देह के धर्म हैं पर हम सूक्ष्म-देह से भिन्न हैं। प्रिय मोद प्रमोद कारण-देह/सुषुप्ति/अज्ञान के धर्म हैं पर कारण-देह से मैं अलग हूँ। मैं तीनों देहों का प्रकाशक इनसे अलग हूँ। तीनों अवस्थायें २४ घंटे में आती-जाती रहती हैं पर मैं इनका द्रष्टा-साक्षी एक समान सदा रहता हूँ इसलिये हमारा तुम्हारा स्वरूप सत्य है। **मा+या = न+होवे** अर्थात् जो न होवे पर दिखाई दे। माया छायारूप है वह पुरुष से उत्पन्न होती है, पुरुष के आश्रित रहती है फिर पुरुष में ही लीन हो जाती है। हमारा स्वरूप सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण 'पुरुष' है, वही ब्रह्म है। झूठी वस्तु भी सत्य में मिलकर सत्यरूप हो जाती है ऐसे ही माया का कार्य अध्यास-रूप संसार '**ज्ञान**' हो जाने पर ब्रह्मरूप ही हो जाता है क्योंकि पुरुष से भिन्न छाया नहीं होती अतः अर्जुन ! **हमारा तुम्हारा स्वरूप सत्-चित्-आनंद है**। जीवात्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु नहीं होती। सब शरीरों में भगवान कहते हैं कि **जीवात्मा मेरा ही स्वरूप है**। सब शरीर मेरी माया से उत्पन्न होते जाते हैं और सब मुझमें ही समा जाते हैं **फिर एक मैं ही शेष रहता हूँ**।
41	41 May	54	श्रीमद्भागवत् प्रथम श्लोक	वेद भगवान के 'निनि०-सनि०-ससा०' तीन स्वरूप बताता है ... श्रीमद्भागवत् :: प्रथम श्लोक :- इस एक ही श्लोक में भगवान के इनों स्वरूपों का निरूपण कर दिया है। ब्रह्म का **'सत्-चित्-आनंद'** स्वरूप है यह ब्रह्म का निनि० स्वरूप है। वह सत् इसलिये है क्योंकि वह तीनों काल में है तथा उसका जन्म-मरण नहीं होता, वह अस्ति मात्र है, चित् कहते हैं सदा एक सा रहने वाले सम्यक ज्ञान को जो अनंत-अखण्ड बोध स्वरूप है और आनंद आदि-अन्त रहित शान्त महासागर के समान आनंद का सिन्धु है – यह **निर्गुण-निराकार** सच्चिदानंद ब्रह्म का स्वरूप है ।। दूसरा भगवान का **सगुण-निराकार** स्वरूप है – निनि० सत्-चित्-आनंद से पूर्ण पुरुष ब्रह्म में, रज्जु में सर्प के समान, पुरुष में छाया के समान तीन गुण वाली **माया** का प्रादुर्भाव होता है तथा इसके सत्वगुण प्रधान **'विद्या'** और मलिन सत्वगुण प्रधान **'अविद्या'** दो रूप हो जाते हैं। विद्या में पड़ा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब सगुण-निराकार ईश्वर हुआ तथा अविद्या में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव कहलाया, यह भी सगुण-निराकार है। ईश्वर सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान है इसका अभी आकार नहीं है, यही जगत की उत्पत्ति-पालन-संहार करता है . अधि० ब्रह्म + विद्यामाया + ब्रह्म का प्रतिबिम्ब = **ईश्वर** और अधि० ब्रह्म + अविद्यामाया + ब्रह्म का प्रतिबिम्ब = **जीव** . ईश्वर इच्छा करता है कि मैं बहुत हो जाऊँ और इच्छा मात्र से वह बहुतरूप हो जाता है। ये जगत जिससे उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है व जिसमें लय हो जाता है वह ब्रह्म है – ये सगुण-निराकार ब्रह्म है। इस ईश्वर ने सबसे पहले ससा०-प्रथम जीव ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मा को शोक-मोह से युक्त देख कर *(अपने स्वरूप के अज्ञान को ही मोह कहते हैं)* ईश्वर ने **सगुण-साकार** विष्णु का रूप धारण कर ब्रह्मा को उपदेश दिया। उपदेश आदि व्यवहार के लिये ससा० रूप धारण करना अनिवार्य है क्योंकि ससा० में ही दे०इ०म०बु०प्रा० सब होते हैं ब्रह्मा को उपदेश :: हे ब्रह्मन विज्ञान के सहित मैं सम्पूर्ण ज्ञान तुझे देता हूँ तू ग्रहण कर // सृष्टि के आदि में न **सत्** *(जागृत)* था, न **असत्** *(स्वप्न)* था और न **सत्-असत् से परे** *सुषुप्ति* ही थी, केवल एक मैं **'ब्रह्म'** ही था। रज्जु में सर्प की भाँति मुझमें माया का प्रादुर्भाव हुआ उसने विद्या-अविद्या दो रूप धारण किये। शुद्ध विद्या-माया में मेरा प्रतिबिम्ब पड़ा वो ईश्वर हुआ और अविद्या में पड़ा मेरा प्रतिबिम्ब जीव कहलाया। उस ईश्वररूप से मैंने तुझ ब्रह्मा को उत्पन्न किया। जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति ही सृष्टि है तथा सुषुप्ति कारण व जा०-स्व० कार्य-माया है। माया के द्वारा मैंने ही जा०-स्व०-सु० का रूप धर लिया यानि ये सब मेरा ही रूप है। जा०-स्व० सुषुप्ति में लय हो जायेंगे और सुषुप्ति/माया मुझमें लीन हो जायेगी जैसे छाया पुरुष में लीन हो जाती है फिर एक मैं ही शेष रहता हूँ इसलिये आदि-अन्त में एक मैं ही हूँ, मध्य में माया से मैं ही अनेक रूप में प्रकट हो जाता हूँ। जा०-स्व०-सु० बस इतनी ही माया है, इस माया को जो प्रकाशता है वह ब्रह्म है। जा०-स्व०-सु० छाया के समान हैं इन्हें ज्ञान नहीं है इनको जानने वाला ब्रह्म है तथा **वह ब्रह्म मैं हूँ** – जो ऐसा जानता है वो जन्म-मरण के दुःख से सदा के लिये मुक्त हो जाता है // बिना अपने सच्चिदानंद स्वरूप के ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। अज्ञान से जीव का वास्तविक ज्ञान ढका हुआ है। अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान से ही होती है। कर्म और उपासना तो सहायक साधन हैं वैसे ही जैसे दीपक-पात्र, तेल और बाती प्रकाश के सहायक साधन हैं, अँधकार तो दीपक की ज्योति से ही दूर होता है। वेद के महावाक्य माचिस के समान हैं इस माचिस को खिंचाकर दीपक की बाती में लगाने वाला गुरु ही होता है। श्रद्धा पात्र है, तेल भक्ति है और बुद्धि बाती है। अग्नि तो दीपक तेल बाती सबमें व्यापक है किन्तु बिना ज्योति यानि बिना अग्नि के प्रकट हुए अँधेरा दूर नहीं हो सकता इसी प्रकार गुरु ईश्वर की वाणी वेद के महावाक्य रूपी ज्ञान द्वारा शिष्य के स्वरूप-अज्ञान का नाश कर देता है, गुरु बताता है कि – हे शिष्य ! ब्रह्म का स्वरूप **'सच्चिदानंद'** है, जो ब्रह्म है वही तू हैं अतः तू स्वयं को सच्चि० ब्रह्म जान । जो ब्रह्म का निनि० स्वरूप है वही जीव का निनि० स्वरूप है। विद्या उपाधि से ये निनि० ही 'ईश्वर' और अविद्या उपाधि से 'जीव' कहलाता है। ईश्वर और जीव का शुद्ध स्वरूप सच्चि०ब्रह्म ही है। मायाकृत दोनों उपाधियाँ एवं उनमें पड़े ब्रह्म के प्रतिबिम्ब झूठे होने से इनका त्याग हो सकता है इस प्रकार इनके हटा देने पर केवल शुद्ध ब्रह्म ही शेष रह जाता है। जा०-स्व०-सु० कार्य-कारणरूप माया है बस इतना ही जगत है। सुषुप्ति की उपाधि से ब्रह्म को ही ईश्वर तथा जा०-स्व० की उपाधि से ब्रह्म को ही जीव कहते हैं। कार्य-कारण उपाधि हटा देने पर केवल पूर्ण बोध, अनंत-अखण्ड ज्ञान, शुद्ध ब्रह्म ही शेष रह जाता है – वही हमारा वास्तविक स्वरूप है ...
42	42 May	43	ज्ञान योग भाग – ३	**गीता २/१६** // ज्ञानयोग // अर्जुन ! संसार में **सत्** और **असत्** दो ही वस्तुऐं हैं, सत् उसे कहते हैं जो सदा रहता है व जिसका जन्म-मरण नहीं होता और असत् उसे कहते हैं जो दिखाई तो पड़ता है पर है नहीं। जो सत् है वह चिद् भी है और आनंद भी, सत्-चिद्-आनंद को पुरुष कहते हैं अर्थात् वह सच्चिदानंद पूर्ण पुरुष ब्रह्म है परमात्मा है, अर्जुन वही तुम्हारा भी स्वरूप है। अर्जुन इस जागृत जगत को माया जानो वह दिखाई तो पड़ता है पर होता नहीं, स्वप्न की तरह जागृत भी असत् है क्योंकि जा० में स्व० झूठा हो जाता है और स्वप्न में जा० झूठा हो जाता है अतः जैसे स्वप्न झूठा है वैसे ही जागृत भी झूठा है वह दीखता है पर होता नहीं। सुषुप्ति में जा०-स्व० दोनों झूठे हो जाते हैं और समाधि में ये तीनों नहीं रहते पर हमारा आत्मा सदा रहता है – वह जा० में रहता है जा० को देखता है, स्व० में रहता है स्व० को देखता है, सु० में रहता है सु० को देखता है और समाधि में जा०-स्व०-सु० ये तीनों नहीं रहते पर चौथा तुरीय हमारा आत्मा रहता है व अपने आप को प्रकाशमान देखता है। हमारा आत्मा सभी देश-काल-वस्तु में एक समान देखता रहता है इसलिये जा०-स्व०-सु० तीनों माया मात्र हैं व तीनों को जो जानता है वह ब्रह्म है – **द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया है** अतः अर्जुन हमारा तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म है द्रष्टा होने से। जीवात्मा तो ज्ञान स्वरूप है, शरीर तो बनते बिगड़ते रहते हैं। जीवात्मा द्रष्टा होने से परमात्मा का स्वरूप है। एक ही आत्मा मानव दानव मनुष्य पशु पक्षी सबमें आकाश की तरह व्यापक, अखण्ड और असंग है। हमारा आत्मा तो चेतन रूपी आकाश है जो जड़ भूताकाश से भी सूक्ष्म है व उसमें प्रविष्ट है और इतना महान है कि आकाश से अनंतगुना बड़ा है // **तैत्तीय उ० – सृष्टिक्रम ::** परम्ब्रह्म परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से सबसे पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु → अग्नि → जल → पृथ्वी → औषधियाँ → अन्न → वीर्य → स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि। दूसरी श्रुति यही कहती है कि अन्न से ही सब भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न को खाकर जीते हैं फिर अन्त में अन्नरूप पृथ्वी में ही लय हो जाते हैं // आत्मा से उत्पन्न पंचभूतों से सम्पूर्ण जगत उत्पन्न होता है फिर विपरीत क्रम से आत्मा में ही लय हो जाता है और अंत में एक आत्मा ही शेष रहता है। आत्मा सदा रहता है पर आत्मा से उत्पन्न होने वाले आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी सदा नहीं रहते अतः आत्मा सत्-चित्-आनंद है और ये जगत असत्-जड़-दुःख रूप ही है। आत्मा सत्य है, ये द्वैत दृश्य जगत माया मात्र है किन्तु परमार्थतः अद्वैत है क्योंकि विलीन होने पर सत्य आत्मा ही शेष

				रहता है। सत् का कभी अभाव नहीं होता और असत् का कभी भाव नहीं होता अतः **तत्वदर्शी** - जो सत्-असत् को सम्यक प्रकार से देखते हैं - उनका ये निर्णय है कि **'सत् ब्रह्म है और असत् माया है'**। अर्जुन ! जो देश-काल-वस्तु में समाया है उसे अविनाशी जानो इस अविनाशी का नाश करने में कोई समर्थ नहीं है। आकाश की ही भाँति आत्मा भी व्यापक और असंग है ।।	
43	43 May	39	ज्ञान योग भाग - ४	**गीता २/१६-२५** // ज्ञानयोग // १६ अर्जुन ! संसार में **सत्** और **असत्** दो ही वस्तुऐं हैं, सत् उसे कहते हैं जो सदा रहता है व जिसका जन्म-मरण नहीं होता और असत् उसे कहते हैं जो दिखाई तो पड़ता है पर है नहीं। सदा रहने वाला सत्-चित्-आनंद ब्रह्म है - वह सदा रहने वाला है इसलिये **सत्** है, अनंत अखण्ड ज्ञान स्वरूप है इसलिये **चित्** है एवं अनंत **आनंद** का सिन्धु है। वह सच्चिदानंद रूप भगवान है तथा असत्-जड़-दुःख रूप ये जगत है, ये सदा नहीं रहता। जा०-स्व०सु० इतनी ही माया है जो आती जाती रहती है, इसको ज्ञान नहीं है इसको देखने वाला सच्चि०ब्रह्म है। ब्रह्म सदा रहता है, तीनों अवस्थाओं को देखता है व तीनों से अलग रहता है किन्तु जा०-स्व०सु० २४ घंटे में बदल जाती हैं १७ अविनाशी तो तू उसको जान जिससे ये सारा दृश्यमान जगत व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश करने में कोई समर्थ नहीं है। इसका जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती १८ सभी देह आदि-अन्त यानि जन्मने-मरने वाले हैं। देवता, दानव-मानव, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र किसी के भी देह सदा नहीं रहते। जिसका जन्म है उसकी मृत्यु अटल है परन्तु परमात्मा सबकी आत्मा है उसका जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती। जीवात्मा/देही नित्य, अविनाशी व अप्रमेय है - इ०म०बु० किसी भी प्रमाण से वह नहीं जाना जा सकता अतः अर्जुन तुम युद्ध करो १९ जो अपनी आत्मा को अविनाशी जानता है जिसका जन्म-मरण नहीं होता तो कहो किसे वह आत्मा मारेगा अथवा कौन उसे मारेगा। जो आत्मा को मरने अथवा मारने वाला समझते हैं वह दोनों ही आत्मा को नहीं जानते २० अर्जुन हमारा तुम्हारा स्वरूप शरीर के भीतर बैठकर देखने वाला आत्मा है। जीवात्मा चेतन है वह देखता है, शरीर तो मकान है जिसे ज्ञान नहीं है। आत्मा का जन्म नहीं होता इसलिये मृत्यु भी नहीं होती क्योंकि मृत्यु का कारण जन्म है और न ये उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है अतः हमारा स्वरूप साक्षी चेतन निर्गुण ब्रह्म है जो अकेले ही सब शरीरों में बैठकर देख रहा है। आत्मा अजन्मा-नित्य है, सनातन्-सदा से है, पुरातन-पुराना है। इन शरीरों के नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता, ये शरीर घट के समान हैं व आत्मा अखण्ड व्यापक आकाश के समान है २१ जो इस प्रकार से आत्मा को नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है वह कैसे किसको मारता और मरवाता है २२ जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र धारण कर लेता है ऐसे ही इन शरीरों के पुराने हो जाने पर ये जीवात्मा इन्हें छोड़कर नये वस्त्र धारण कर लेता है २३ इस आत्मा को, हमारे तुम्हारे स्वरूप को कोई छेदन नहीं कर सकता, कोई शस्त्र काट नहीं सकता। आत्मा तो आकाश से भी अति सूक्ष्म है न अग्नि आत्मा को जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकता है २४ क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य , अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है अतः आत्मा नित्य, सत्य, व्यापक, खम्बे की तरह स्थाणु-ठोस, व्यापक होने से अचल स्थिर और सनातन है यानि सदा रहने वाला क्योंकि अजन्मा है - ये आत्मा का स्वरूप है २५ आत्मा अव्यक्त-निनि० है और ये शरीर व्यक्त है दिखाई पड़ रहे हैं। आत्मा तो कण-कण में व्याप्त है तथा सबके भीतर बैठकर देखने वाला अव्यक्त है, देह ही व्यक्त हैं। आत्मा अदृष्टो-द्रष्टा है जो दिखाई नहीं देता पर देखता है। आत्मा अचिन्त्य अर्थात् चित्त आत्मा का चिन्तन नहीं कर सकता पर आत्मा चित्त को देखता व जानता है। आत्मा अविकारी है यानि षट्विकार रहित है। विकार शरीरों में हैं आत्मा में कोई विकार नहीं है। इस प्रकार से अपने स्वरूप चेतन आत्मा को जान करके हमें शोक नहीं करना चाहिये /// भगवान का अर्जुन के माध्यम से हम सबको यह संदेश है कि सब विकारों से रहित आत्मा में जन्म-मरण नहीं है शरीरों में ही जन्म-मरण है। सभी शरीर भगवान की माया से बनते हैं और पुनः मिट जाते हैं पर आत्मा ज्यों का त्यों रहता है क्योंकि आत्मा परमात्मा का ही स्वरूप है अतः अपने आप को सच्चि० आत्मा जानो ये शरीर मत मानो। मैं देह नहीं हूँ किन्तु देह में रहने वाला व देह को देखने वाला चेतन अविनाशी आत्मा हूँ - यही दृढ़ ज्ञान अभीष्ठ है ///	
44	44 May	42	ज्ञान योग भाग - ५	**गीता २/१८-२३** // ज्ञानयोग // १८-२१ अर्जुन ! सब शरीरों में जो जीवात्मा है जिसके रहने से ये देह जीवित मालूम पड़ते हैं वह जीवात्मा मेरा ही स्वरूप है। अर्जुन ये जीव मेरा ही सनातन अंश है इसलिये उसका जन्म-मरण नहीं होता। मृत्यु जन्म होने वाले की ही होती है। तुम जीवात्मा हो, देह नहीं हो। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अटल है, देह का ही जन्म-मरण होता है। शरीर के मरने से जीवात्मा का मरण नहीं होता। आत्मा अजन्मा है इसलिये नित्य, शास्वत व सनातन है। सारे शरीर मेरी माया से उत्पन्न होते है, मेरे आश्रित रहते हैं फिर मुझमें ही लीन हो जाते हैं, इन शरीरों का ही जन्म-मरण होता है। जिससे ये जगत उत्पन्न होता है, जिसमें रहता है व जिसमें विलीन हो जाता है वह ब्रह्म है। वही मैं हूँ, जीवात्मा मेरा ही स्वरूप है, सब शरीरों में बैठकर मैं ही देखता हूँ इस प्रकार सब देहों के भीतर मैं ही जीवात्मा हूँ और बाहर मैं ही परिपूर्ण परमात्मा हूँ। जो इस प्रकार से अपनी आत्मा को जानता है कि मैं अकर्म-अविनाशी हूँ वह न किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जा सकता है। **आत्मा ही तत्व है, सत्य को ही तत्त्व कहते हैं**। आत्मा अकर्म है व सभी कर्म माया राज्य (मन बुद्धि इन्द्रियों) में हैं। हमारा तुम्हारा स्वरूप साक्षी चेतन एवं गुणातीत आत्मा है। सारा संसार पंचभूतों का ही विस्तार है। जा०-स्व०-सु० तीनों कार्य-कारण रूप माया है हमारा तुम्हारा स्वरूप ४था है जो तीन को गिन देता है इसलिये वह तो स्वयं सिद्ध है, जा०-स्व०-सु० तो जड़ हैं, चेतन पुरुष ४था ही इन्हें देखने वाला है। हमारा स्वरूप चेतन 'ज्ञान-स्वरूप' है व आकाश के समान असंग है इसलिये अपने आप को शरीर मत मानो हमारा स्वरूप आत्मा है - **मैं देह नहीं हूँ किन्तु आत्मा हूँ यही ज्ञान का लक्षण है**। अज्ञानी का शरीर में ही आत्म भाव होता है ऐसा ही निश्चय जब आत्मा में हो तो वह नित्य मुक्त ही है। आत्मा आकाश के समान व्यापक और नित्य है - यही वास्तविक ज्ञान है २२ जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़ कर नये कपड़े पहन लेता है इसी प्रकार ये देह जब वृद्ध हो जाते हैं तब जीवात्मा इन शरीरों को छोड़कर नये शरीर धारण कर लेता है। जीवात्मा वही का वही रहता है। जीवात्मा सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण पुरुष है और ये शरीर कपड़े हैं परन्तु कब तक ? जब तक इसे ज्ञान नहीं होता, जब इसे ज्ञान हो जाता है तब ये नये शरीर नहीं धारण करता है, तब ये मुक्त हो जाता है और ब्रह्मरूप में स्थित हो जाता है २३ इस आत्मा को कोई अस्त्र-शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकता, पानी गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता क्योंकि आत्मा आकाश से भी अति सूक्ष्म व उसमें भी प्रविष्ट है और चेतन है। **आत्मा नित्य, सत्य, व्यापक, स्थाणु, अचल, स्थिर, सनातन व अदृष्टो-द्रष्टा है** जबकि हमारा शरीर माया का कार्य एवं दृश्य है अतः हमारा स्वरूप तो आत्मा है जो जन्म-मरण से छूटा हुआ ही है। ज्ञानी लोग आत्मा में ही अभिमान करते हैं और अज्ञानी देह में अभिमान करते हैं। **मैं देही आत्मा हूँ ये शुद्ध-अहंकार है इससे जन्म-मरण नहीं होता** ।।	
45	45 May	30	तीन सत्तायें	शास्त्रों में प्रातिभासिक, व्यावहारिक, पारमार्थिक तीन सत्तायें बताई गयी हैं, १. प्रातिभासिक सत्ता - हम आप जो स्वप्न देखते हैं वह प्रातिभासिक सत्ता है, उसमें कोई सत्यता नहीं है, बस थोड़ी देर के लिये ही प्रतीति मात्र होती है, प्रातिभासिक स्वप्न की बहुत थोड़ी उम्र है इसमें माता-पिता बहन-भाई शत्रु-मित्र थोड़ी देर के लिये ही दिखाई पड़ते हैं, आँख खुली तो सब समाप्त २. व्यवहारिक सत्ता - इस सत्ता में ईश्वर, जीव और जगृत का जगत है। इसी सत्ता में ईश्वर, जीव, जगत, गुरु और शिष्य का व्यवहार होता है तथा ब्रह्म, माया, ईश्वर, जीव और जगत क्या है? इसी में जान सकते हैं ३. पारमार्थिक सत्ता - ये परमसत्य सत्ता है। शास्त्र एवं गुरु के माध्यम से इसको जान सकते हैं। शास्त्रों में जागृत जगत के शरीरों की लगभग १०० वर्ष की आयु बताई गयी है। **'परमार्थ'** परमसत्य परम **ब्रह्म** है। इसी को निकेतन कहा है यानि चराचर जगत उसी में रहता है, वही आधार-अधिष्ठान है। ब्रह्म में ही जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय होती रहती है। हमारा वास्तविक स्वरूप भी परमार्थ ही है। व्यवहारिक सत्ता वाला जो हमारा शरीर है ये परमसत्य नहीं है पर इस व्यवहारिक शरीर से हमारे पारमार्थिक स्वरूप 'ब्रह्म' का ज्ञान होता है। ये नर शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है क्योंकि इस मनुष्य शरीर के द्वारा ही परमसत्य परमार्थ सत्ता का ज्ञान होता है इसलिये ये नर शरीर श्रेष्ठ है। भगवान राम ने कहा है कि ये नर शरीर हमें मिला है नारायण को जानने के लिये व नारायण को जानकर नर भी नारायण रूप ही हो जाता है - **'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति'** । ब्रह्म परमार्थ सत्ता है, वही जगत का आधार-अधिष्ठान है। परमार्थ निकेतन परमसत्य का ज्ञान कराता है। वेद कहता है कि जो सच्चिदानंद ब्रह्म है वह परमसत्य ब्रह्म ही तुम्हारा भी स्वरूप है। हमारा तुम्हारा स्वरूप सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण पुरुष है और असंग है यानि दे०ह०म०बु० के साथ रहते हुए भी असंग है जैसे आकाश। वह सब स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि शरीरों के साथ रहते हुए भी आकाश के समान असंग रहता है। ये स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि सब माया के रंग हैं असंग होने से इन रंगों से हमारा संग नहीं होता। हम देह नहीं हैं ये देह माया के हैं पर इन सब देहों की आँखों से देखने वाले हम चेतन आत्मा हैं ।।	
46	46 May	44		**गीता २/१८-२७** // ज्ञानयोग // अर्जुन ! - **संसार में २ ही तत्व हैं** एक सत् और दूसरा असत् । शरीरों में रहने वाला हमारा द्रष्टा-साक्षी आत्मा **सत्** है क्योंकि वह सदा रहता है और **असत्** वह है जो सदा नहीं रहता वह जन्मता-मरता रहता है।	

			ज्ञान योग भाग - ६	आत्मा का जन्म नहीं होता इसलिये उसकी मृत्यु नहीं होती, मृत्यु का कारण जन्म है जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अटल है। अर्जुन! शरीर के भीतर हमारा तुम्हारा जो चेतन आत्मा है उसे शस्त्र काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकता, पानी गला नहीं सकता वायु सुखा नहीं सकता और मृत्यु मार नहीं सकता क्योंकि वह आकाश से भी अति सूक्ष्म है और उसमें भी प्रविष्ट है। आत्मा नित्य है सर्वत्र व्यापक है ठोस यानि आनंदघन अचल सनातन और निर्विकार है। आत्मा सदा अव्यक्त है, ये दिखाई देने वाले शरीर व्यक्त हैं परन्तु इन्हें देखने वाला द्रष्टा अदृश्य-अव्यक्त ही रहता है। जो भी दृश्य वह माया है व आत्मा दृष्टा है। शरीरों का समूह ये संसार माया है, आत्मा सत्य है, आत्मा सत्-चित्-आनंद से पूर्ण पुरुष है और ये शरीर छाया के समान झूठे हैं। छाया पुरुष से उत्पन्न होती है, पुरुष के आश्रित रहती है फिर पुरुष में ही लीन हो जाती है। इस छाया को ज्ञान नहीं है। छाया के समान ये शरीर पुरुष (आत्मा) से उत्पन्न होते है, पुरुष के आश्रित रहते हैं व पुरुष में ही विलीन हो जाते है। हमारा आत्मा अचिन्त्य है - मन-वाणी का विषय नहीं है, षट्विकार रहित यानि अविकारी है, ये शरीर विकारी हैं आत्मा नहीं। अनंत कोटि ब्रह्माण्ड भगवान की माया से क्षण मात्र में बन जाते हैं। द्रष्टा चेतन आत्मा ब्रह्म स्वरूप है। दृश्यमान जा०-स्व०-सु० - ये तीनों कार्य-कारण रूप माया हैं, २४ घंटे में ये ३नों अवस्थायें बदल जाती हैं ४था हमारा आत्मा है जो तीनों अवस्थाओं को देखता रहता है। अर्जुन! हमारा चेतन आत्मा अनंत अखण्ड ज्ञान प्रकाश है इसी को ब्रह्म कहते हैं। अर्जुन ! सूर्य चन्द्र तारागण विद्युत और अग्नि आदि ज्योतियों के हम द्रष्टा हैं पर ये हमें नहीं जानते। इनका उदय-अस्त भी होता है परन्तु हमारा चेतन आत्मा उदय-अस्त रहित ज्ञानरूपी सूर्य है। अर्जुन ! अपनी आत्मा को सत्-चित्-आनंद का सिन्धु और इस जगत को असत्-जड़-दुःखरूप जानो। अपनी आत्मा को इस प्रकार जानकर कि सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा **'ब्रह्म'** है - शोक नहीं करना चाहिये। अर्जुन ! यदि तुम आत्मा का जन्म मानते हो तो जिस आत्मा का जन्म होगा उसका मरण भी होगा इसका कोई उपाय नहीं है अतः बिना उपाय वाले विषय का भी शोक नहीं करना चाहिये। ये जगत भगवान की इच्छा से यानि माया से बिना सामग्री के बना है इसलिये ये झूठा है। ये द्वैत दृश्य माया मात्र है। अर्जुन ! ये जो भूत-प्राणी दिखाई पड़ रहे हैं ये अपनी उत्पत्ति के पहले नहीं थे, बीच में दीख रहे हैं तथा निधन के बाद फिर अदृश्य हो जायेंगे अतः ये माया मात्र हैं। ये नियम है कि जो आदि-अन्त में नहीं होता वो मध्य में भी नहीं होता इसलिये वह झूठी माया है। इस माया को देखने वाला हमारा आत्मा आदि-मध्य-अन्त सदैव है, वह सत्य है अतः अपने आप को सच्चिदानंद ब्रह्म जानो और जा०-स्व०-सु० दृश्यमान जगत को असत्-जड़-दुःखरूप माया जानो । इनको देखने वाला ४था द्रष्टा-साक्षी हमारा आत्मा सच्चिदानंद ब्रह्म है ।।
47	47 May	29	⊕ ⊕	**सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** // **अ०रा०/प्रथम सर्ग/राम हृदय** - **'रामं विद्धि परम ब्रह्म...स्वप्रकाशं अकल्मिषम्'** - हे हनुमान ! राम का निनि० स्वरूप परम ब्रह्म है, जो प्रकृति से परे हो उसे परम कहते हैं, जो सबसे बड़ा हो उसे ब्रह्म कहते हैं तथा सत्-चित्-आनंद से पूर्ण को पुरुष कहते हैं इसलिये **राम परम पुरुष ब्रह्म हैं**। राम को सत्-चित्-आनंद कहते हैं क्योंकि राम का जन्म-मृत्यु नहीं है इसलिये **सत्** है - जो सदा रहे वह सत् है, **चिद्** ज्ञान को कहते हैं - राम उदय-अस्त रहित ज्ञान का सूर्य हैं जबकि संसार में जो सूर्य प्रतिदिन उदय-अस्त होता है उसे ज्ञान नहीं है, राम इस सूर्य के प्रकाशक हैं। राम में मोह-अज्ञान रूपी रात्रि नहीं है तथा राम आदि-अन्त रहित **आनंद** के सिन्धु हैं जिसके एक बिन्दु मात्र से सारा संसार आनन्दित हो रहा है। जीव तो सुख का प्यासा है, जीव को स्त्री धन पुत्र राज्य किसके लिये चाहिये ? सुख के लिये ही चाहिये अतः ये सुख का प्यासा जीव सुख रूपी पानी ही खोज रहा है जैसे प्यासे को त्रिलोकी के राज्य की अपेक्षा पानी ही चाहिये क्योंकि पानी से ही प्यास बुझेगी और प्राणोंकी रक्षा होगी इस प्रकार सीता माता कहती हैं कि हे हनुमान ! सुख-सिन्धु तो राम ही हैं जिससे जीव की प्यास बुझ सकती है। राम को पाकर ही जीव अज्ञान, जन्म-मृत्यु और दुःख से छूट सकता है। **राम एक अद्वितीय सच्चि० ब्रह्म हैं** //
48	48 May	44	आत्मा का स्वरूप	// आत्मा का स्वरूप // अर्जुन! हमारा तुम्हारा स्वरूप सत्-चित् आत्मा है। आत्मा साक्षी मात्र है अचल सनातन और निर्विकार है, वह दे०इ०म०बु०प्रा० कोई नहीं है। आत्मा में जन्म-मृत्यु नहीं है। स्त्री-पुरुष, वृक्ष-पर्वत आदि धर्म, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि वर्ण, गोरा-कालापना, बाल्यावस्था-वृद्धावस्था, जन्म-मरण आदि सब स्थूल देह में ही हैं आत्मा में नहीं हैं आत्मा तो केवल द्रष्टा-साक्षी है। भूख-प्यास, काम-क्रोध, लोभ-मोह, दया-क्षमा, क्षान्ति आदि सब सूक्ष्म देह में हैं। हमारी तुम्हारी आत्मा में ये कोई धर्म नहीं हैं, आत्मा तो इन सब विकारों से रहित है। जब तक मन है तभी तक सुख-दुःख हैं, निद्रा मूर्छा मरण में मन नहीं है तो सुख-दुःख भी नहीं हैं। निद्रा कारण शरीर है, मोद-प्रमोद कारण शरीर के धर्म हैं, कारण देह को जानने वाले आत्मा के ये धर्म नहीं हैं। **आत्मा ३नों देहों का द्रष्टा साक्षी चेतन एक अकेला है।** सब शरीरों में एक ही आत्मा देख रहा है। **आत्मा माने अपना स्वरूप** - इसे समझो ! आत्मा आकाश के समान **व्यापक** और सत्य-ज्ञान-आनंद से **पूर्ण** है, सदा रहता है, तीनों काल में है, देह के साथ है और बिना देह के भी है। आत्मा **देव** है देखने वाले को देव कहते हैं तथा दिखाई देने वाले देह **देवालय** हैं। हर देह रूपी देवालय में देव एक ही है पर स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि देवालय अनेक रूप में हैं, देखने वाले को ही आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। आत्मा में जन्म-मरण व अन्य दुःख हैं ही नहीं, आत्मा तो **सुखरूप** और **शान्त** है इसलिये सुख-शान्ति की प्राप्ति और जन्म-मरण दुःख की निवृत्ति नहीं करनी क्योंकि प्राप्ति उसकी की जाती है जो न हो और निवृत्ति होने वाले की जाती है - केवल अपने स्वरूप को जानना/पहचानना ही कर्तव्य है। आत्मा अनंत अखण्ड ज्ञान स्वरूप व अकर्म है सभी कर्म दे०इ०म०बु०प्राणों में ही हैं, आत्मा तो मन-बुद्धि को देखने वाला कर्मों का **साक्षी** है व इनसे बिल्कुल अलग है। आत्मा आकाशवत् **असंग** है, दे०इ०म०बु०प्रा० में रहता है पर इनसे मिलता नहीं। आत्मा में कोई इच्छा नहीं है क्योंकि आत्मा सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण है। जब तक इच्छा रहती है तब तक अशान्ति बनी रहती है, सब इच्छाओं के पूरे होने पर मन **निस्पृह** और **शान्त** हो जाता है - आत्मा का ये स्वरूप है। जब तक जीव अपने पूर्ण सच्चिदानंद स्वरूप को नहीं जानता तो वह स्वयं को स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि ये शरीर ही मान बैठता है। ये संसार माया का कार्य है - सब शरीर व अनंत कोटि ब्रह्माण्ड क्षण मात्र में बन जाते हैं, माया से पंचभूत और पंचभूतों से ये जगत बन जाता है तथा भ्रम से जीव स्वयं को ये शरीर मान बैठता है। अर्जुन ! हमारा आत्मा स्त्री-पुरुष-नपुंसक, काक-कोयल आदि नहीं है पर इन सब देहों के भीतर देव रूप से बैठकर देख रहा है। देह देवालय है और देव कल्याण स्वरूप आत्मा है इसलिये **'मैं देह हूँ'** इस **अज्ञान** को छोड़ कर **'मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ'** ऐसा जानो - **देह दृश्य है और दृश्य द्रष्टा नहीं हो सकता** ।।
49	49 May	29	⊕ ⊕	**हनुमानजी की भ० राम से विनती -** त्वद् रूपं ज्ञातुमिच्छामि .... येन मुक्तो भवाम्यहम्' // **सीताजी द्वारा भगवान राम का नि०नि० स्वरूप निरूपण** - 'रामं विद्धि परम ब्रह्म...स्वप्रकाशं अकल्मषम्' - हे हनुमान ! राम का निनि० स्वरूप **परम ब्रह्म** है, जो प्रकृति से परे है वह **परम** है, सत्-ज्ञान-आनंद से पूर्ण को पुरुष कहते हैं - राम पूर्ण पुरुष हैं, राम सबसे बड़े हैं इसलिये राम को **ब्रह्म** कहते हैं, राम आदि-अनंत हैं जन्म ही आदि है व मृत्यु अन्त है, राम का जन्म नहीं होता अतः मृत्यु नहीं होती इसलिये राम **सत्** है। राम उदय-अस्त रहित सदा एक समान प्रकाशमान ज्ञान के सूर्य हैं इसलिये **चिद्** है। राम आदि-अन्त रहित आनंद के सिन्धु है इसलिये **आनंद** हैं। इस आनंद सिन्धु के एक बिन्दु मात्र से सारा संसार सुखी हो रहा है। राम एक अद्वितीय हैं, एक ही राम सारे संसार में व्यापक आकाश के समान समाये हैं। राम तो आकाश से भी अनंत गुना बड़े हैं व उसमें भी समाये हैं। भूताकाश तो जड़ है राम ज्ञान स्वरूप हैं। ये जो संसार में शरीर हैं इन्हें उपाधि कहते हैं राम उनमें उपहित हैं जैसे घट उपाधि में उपहित घटाकाश। घटाकाश घट से असंग ही रहता है। इसी प्रकार से सारे संसार के नाम-रूप घट के समान उपाधि हैं व राम सब शरीरों में उपहित हैं। राम उपाधियों से **असंग** हैं। शरीर रूपी घट ही नष्ट होते हैं इनके भीतर उपहित राम अविनाशी हैं। राम सत्ता मात्र हैं वह भूत-वर्तमान-भविष्य तीनों काल में हैं इसलिये राम सत् हैं। राम का निनि० स्वरूप इन्द्रियों का विषय नहीं है इसलिये राम को **अगोचर** कहते हैं //
50	50 May	43	ज्ञान योग भाग - ७	**गीता २/२३-२५** // ज्ञानयोग // अर्जुन ! हमारा तुम्हारा स्वरूप चेतन आत्मा है उसे अस्त्र-शस्त्र से काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकता, जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता। ये सब माया के कार्य हैं, हमारा तुम्हारा स्वरूप तो सच्चिदानंद ब्रह्म है। माया तो पुरुष में छाया के समान सच्चि०ब्रह्म से उत्पन्न होती है, उसी के आश्रित रहती है फिर उसी में लीन हो जाती है व अन्त में एक आत्मा ही शेष रह जाता है। ये माया झूठी है यह आत्मा का नाश नहीं कर सकती। **आत्मा नित्य, सर्वत्र परिपूर्ण, व्यापक, स्थाणु, अचल और सनातन** है। अर्जुन ! हमारा आत्मा तो स्वभाव से ही सच्चिदानंद स्वरूप है। आत्मा का जन्म नहीं है तो मृत्यु का प्रश्न ही नहीं होता इसलिये आत्मा **सत्** है, अनंत-अखण्ड ज्ञान स्वरूप है इसलिये आत्मा **चिद्** है। जो सत् है उसमें मृत्यु नहीं है, जो चिद् है उसमें अज्ञान नहीं है और जो **आनंद** है उसमें दुःख नहीं है। स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-क्षत्रिय, पशु-पक्षी आदि ये शरीर नाम-रूप हैं जो आते-जाते रहते हैं। आत्मा अवाँग-मनसगोचर, मन वाणी से परे सबकी आँखों से देख रहा है। गुणातीत साक्षी-चेतन आत्मा एक अकेला है। अपने स्वरूप को समझो अर्जुन / *'आत्मा साक्षी विभु पूर्णः एको मुक्तश्चिदक्रिय, असंगो निःस्पृह*

						शान्तः भ्रमात् संसारवान् इव' - भ्रम से 'मैं दे०ह०म०बु० हूँ' ऐसा लगता है। दे०ह०म०बु० छाया के समान है व हमारा स्वरूप सत्य-ज्ञान-आनंद से पूर्ण पुरुष के समान है। जीव का स्वरूप सच्चिदानंद स्वभाव सिद्ध है इसलिये उसकी प्राप्ति नहीं करनी व आनंद रूप है इसलिये दुःख की निवृत्ति नहीं करनी। आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप पक्का रंग है जो जगत के स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी वृक्ष-पर्वत आदि सब रंगों में समाया है पर **असंग** है। ईश्वर और जीव दोनों के शरीर नहीं रहते किन्तु आत्मा सदा रहता है। **मैं देह नहीं हूँ किन्तु देह मे रहने वाला चेतन आत्मा हूँ - यही ज्ञान का लक्षण है** जैसे अज्ञान अवस्था में 'मैं स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-क्षत्रिय, मोटा-पतला, काला-गोरा हूँ' ऐसे ही ज्ञान पश्चात् **'मैं इन सबको देखने वाला चेतन आत्मा हूँ'** - **यही वास्तविक ज्ञान है** **शरीर मन्दिर है**, बुद्धि पार्वती है, **आत्मा शिव है** व इन्द्रियाँ गण हैं - **यही वास्तविक ज्ञान है** *देहो देवालय प्रोक्ता .. .. सोहं भावेन पूजये* - देहाभिमान का त्याग कर अपनी **आत्मा में अहंभाव करना ही वास्तविक ज्ञान है** **आत्मा द्रष्टा-साक्षी रथी है**, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, इन्द्रियाँ लगाम हैं व विषय मार्ग है // हमारा आत्मा निर्विकार है, हम दे०ह०म०बु०प्रा० नहीं हैं किन्तु इनमें रहने वाले द्रष्टा-साक्षी चेतन सच्चिदानंद ब्रह्म हैं - ये हमारा स्वरूप है तथा असत्-जड़-दुःखरूप ये जा०-स्व०-सु० माया है जो २४ घंटे में बदल जाती है पर हम इन तीनों से अलग ४थे हैं //	
51	51 May	37				**गीता १३/१-२ ::** चराचर जगत भगवान से प्रकट होता है व चारों वेद भगवान के निःस्वास स्वरूप हैं। वेदों का सार श्रीमद्भगवद् गीता और उपनिषद हैं इनका अर्थ बताने वाले सब गुरुओं के गुरु भगवान श्रीकृष्ण हैं। **जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण का अर्जुन को उपदेश :-** १. अर्जुन ये शरीर क्षेत्र है ओर इस शरीर में रहने वाला जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है। जैसे खेत और किसान होता है वैसे ही जीवात्मा किसान के समान है और शरीर खेत के समान हैं। किसान को ज्ञान है वह खेतों को जानता है व अपनी इच्छानुसार खेती करता है पर खेतों को ज्ञान नहीं है। जो तुम अपने लिये चाहते हो वही सबके लिये चाहो। खेत में किसान जो कुछ बोता है उसका उसे कईगुना होकर मिलता है ये प्रकृति का अचल विधान है इसलिये मीठीवाणी बोलो, किसी को दुःख न दो...आदि। हे कुन्ती पुत्र ! ये शरीर क्षेत्र है व इस शरीर को जो जानता है वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। शरीर में रहने वाला जीवात्मा क्षेत्रज्ञ ज्ञानवान है। किसान खेत नहीं हो सकता, खेत जड़ है व किसान चेतन है द्रष्टा है अतः हम क्षेत्रज्ञ ज्ञानवान जीवात्मा हैं, हम अपने शरीर को जानते है इसलिये हम शरीर नहीं हो सकते २. अर्जुन ! ये जितने भी शरीर हैं ये सब क्षेत्र हैं इन सभी शरीरों में रहने वाला, इनको जानने वाला मैं ही क्षेत्रज्ञ हूँ, जीव के स्थूल, सूक्ष्म और कारण ३ शरीर क्षेत्र हैं, व्यष्टि शरीर जीव के होते हैं और समष्टि शरीर ईश्वर के होते हैं। पंचभूतों से सब शरीर बनते हैं। पंचभूतों के पंचीकरण से २५ तत्त्वों का स्थूल शरीर बनता है // स्थूल शरीर संरचना का सविस्तार वर्णन // स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि शरीरों के नाम हैं जीवात्मा के नहीं इसलिये जीवात्मा स्त्री-पुरुष नहीं है। जो सब शरीरों के भीतर रहता है व सब शरीरों को जानता है वह क्षेत्रज्ञ है। हमारा स्वरूप जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है शरीर नहीं है अतः अर्जुन ! तुम शरीर नहीं हो, तुम ईश्वर के अंश अविनाशी चेतन सुखराशि हो ।।	भाग १
52	52 May	49				**गीता १३/१ ::** अर्जुन ये शरीर **क्षेत्र** है और इस शरीर को जो जानता है वह जीवात्मा **क्षेत्रज्ञ** है। मनुष्य पशु पक्षी सूर्य चन्द्र आदि शरीर मेरी माया से क्षण मात्र में बन जाते हैं, इनको ज्ञान नहीं है। इन शरीरों में बैठकर जो देख रहा है वह मैं ही हूँ। शरीरों के भीतर मुझे **'जीवात्मा'** और बाहर परिपूर्ण मुझे ही **'परमात्मा'** कहते हैं - दोनों में भेद नहीं है। जैसे घटाकाश और महाकाश में नाम का ही भेद है पर आकाश अखण्ड है ऐसे ही मैं अखण्ड हूँ। जीव के स्थूल-सूक्ष्म-कारण ३ शरीर की भाँति ही मेरे भी ३ शरीर होते, जीव के व्यष्टि शरीर है व मेरे समष्टि शरीर हैं। जो दिखाई पड़ते हैं वे २५ तत्त्वों वाले स्थूल देह पंचमहाभूतों के पंचीकरण से बनते हैं स्थूल शरीर संरचना का सविस्तार वर्णन ये स्थूल देह मकान के समान हैं इन्हें ज्ञान नहीं है किन्तु इनमें रहने वाला जीवात्मा ज्ञानवान है, वह अपने मकान को जानता है। **स्थूल देह के भीतर सूक्ष्म देह है जो १६ तत्त्वों से बना है - ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ प्राण व मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार** सूक्ष्म शरीर की सविस्तार संरचना → **पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ :-** आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी आदि पंचभूतों से ५ ज्ञानेन्द्रियाँ क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना व नासिका एवं इनके विषय - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध उत्पन्न होते हैं **पाँच कर्मेन्द्रियाँ :-** आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी पंचभूतों से ५ कर्मेन्द्रियाँ क्रमशः वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ और पायु व उनके विषय क्रमशः बोल-चाल, लेन-देन, गमनागमन, मूत्र एवं मल त्याग उत्पन्न होते हैं **पाँच प्राण :-** प्राण - शुद्ध वायु/स्वाँस, प्राण ही जीवन है, अपान - अशुद्ध वायु/प्रस्वाँस या गुदामार्ग से बाहर, व्यान - व्याप्त होकर रहता है व शरीर में सभी क्रियायें करता है समान - नाभि स्थान में रहता है, भोजन का पाचन एवं सार भाग से रस-रक्त-माँस-मेदा-अस्थि-मज्जा-शुक्र **७ धातु** उत्पत्ति, उदान - खाये-पिये का विभाजन गर्भोपनिषद	भाग २
53	53 May	49				**गीता १३/१-२ ::** अर्जुन संसार में दो ही वस्तु हैं एक **क्षेत्र** है और दूसरा **क्षेत्रज्ञ** है। जीव के और ईश्वर के भी स्थू०सू०का० ३ शरीर हैं। दिखाई पड़ने वाले स्थूल देह पंचमहाभूतों के पंचीकरणकृत २५ तत्त्वों से बनते हैं इसलिये स्थूल शरीर कहने से २५ तत्त्व आजाते हैं। हमारे शरीर अन्न से बने हैं, अन्न की सातवीं धातु वीर्य है जिससे सब शरीर उत्पन्न होते हैं ** स्थूल शरीर की संक्षेप में संरचना ** इसके भीतर १६ तत्त्वों से बना सूक्ष्म शरीर है जो अपंचीकृत पंचतत्त्वों से बना है सूक्ष्म शरीर की सविस्तार संरचना ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ प्राण + **अन्तःकरण = मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार** । **अन्तःकरण :- मन** - मन वायु तत्त्व से बना है। मन बड़ा चंचल है, अभ्यास करने से संसार का चिन्तन हट जाता है व मन का निरोध और वैराग्य होता है। इसे योग कहते हैं, योग से मन स्थिर होता है, मन का विषय संकल्प-विकल्प करना है **बुद्धि** - बुद्धि का विषय ज्ञान है - बुद्धि निर्णय करती है। बुद्धि अग्नि तत्त्व से बनी है व अत्यन्त शुद्ध है, इसमें ब्रह्म/चेतन प्रतिबिम्बित होता है। संसार यानि 'शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध' का ज्ञान सबका ज्ञान बुद्धि के द्वारा ही होता है। बुद्धि शरीर में सबसे श्रेष्ठ है, बुद्धि ही शरीर की रक्षा करती है, बुद्धि का ज्ञान नष्ट होने पर शरीर का नाश हो जाता है। बुद्धि को शुद्ध रखने के लिये सतसंग, शुद्ध भोजन, शुद्ध विचार होने चाहिये **चित्त** - जल तत्त्व से चित्त बनता है, चित्त का विषय चिन्तन करना है। बुद्धि जिसका निश्चय करती है चित्त उसका चिन्तन करता है **अहंकार** - पृथ्वी तत्त्व से अहंकार बना है चित्त जिसका चिन्तन करता है अहंकार उसी में अहंकार करता है। *जीव अज्ञान काल में शरीर में अहंकार करता है* - ये *अशुद्ध अहंकार* है और ज्ञान काल में आत्मा में यानि *'मैं शरीर में रहने व शरीर को देखने वाला चेतन आत्मा हूँ'* - ये *शुद्ध अहंकार* है। अशुद्ध अहंकार से जन्म-मरण का बन्धन है और शुद्ध अहंकार से मुक्ति है कारण शरीर संरचना अपने स्वरूप चेतन आत्मा को न जानना तीसरा अज्ञान रूपी कारण शरीर है जीव के ३ शरीर हैं व जीव ४था है, जीव शरीर नहीं है। जीवात्मा तीनों शरीरों में रहता व उनको जानता है पर तीनों शरीर जीव को नहीं जानते। जीव की ही भाँति ईश्वर के भी ३ शरीर होते हैं। समष्टि स्थूल देह मिलकर ईश्वर का एक स्थू० शरीर है **'विराट'** है, समष्टि सूक्ष्म देह मिलकर ईश्वर का एक सूक्ष्म शरीर **'हिरण्यगर्भ'** है तथा समष्टि कारण देह मिलकर ईश्वर का एक कारण शरीर **'अव्याकृत'** है और मैं चौथा हूँ। हे अर्जुन ! व्यष्टि-समष्टि शरीरों में रहने वाला चेतन मैं ही परमात्मा हूँ। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है - ये मुझ सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर का मत है। ये दो ही ज्ञान हैं। समस्त समष्टि-व्यष्टि दृश्य **'क्षेत्र'** है, संसार के सभी शरीरों में मैं ही व्यापक हूँ, मैं ही देखता हूँ, सब शरीरों देखने वाला मैं परमात्मा ही हूँ। देखने वाला **'देव'** और दिखाई पड़ने वाला **'देवालय'** है। सभी देवालय मेरी माया से बने हैं, सबकी आखों से देखने वाला मैं परमप्रकाश रूप ब्रह्म हूँ - यही उत्तम ज्ञान है। हम शरीरों को देखते हैं इन्हें ज्ञान नहीं है, न ये अपने को जानते हैं और न दूसरे को, देखने वाला सबमें एक ही है। द्रष्टा ब्रह्म है दृश्य माया है - यही सम्पूर्ण ज्ञान है। हमारा स्वरूप द्रष्टा होने से ब्रह्म है, दृश्य तो आने-जाने वाली माया है	भाग ३
54	54 May	35				**गीता १३/१-२ ::** अर्जुन ! ये शरीर क्षेत्र हैं और इस शरीर में जो रहता है व इन्हें जानता है वह क्षेत्रज्ञ है। जीव के ३ शरीर होते हैं और मुझ ईश्वर के भी ३ शरीर होते हैं। स्थू०-सू०-का० शरीर जीव के तथा विराट-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत मुझ ईश्वर के तीन शरीर हैं। जीव का स्वरूप अपने तीनों शरीरों से भिन्न है वह इनों शरीरों का द्रष्टा-साक्षी है इसी प्रकार मेरे तीनों शरीरों से मैं भिन्न हूँ, मैं समष्टि इनों शरीरों का द्रष्टा हूँ ** स्थूल-सूक्ष्म-कारण देह संरचना का संक्षिप्त वर्णन ** जीव के समष्टि स्थू० शरीर मेरा एक शरीर है उसे **विराट** कहते है, जीवों के सभी शरीर मेरे विराट शरीर में जुड़े हुए हैं जैसे पीपल के वृक्ष में जुड़े हुए डाली फूल फल और पत्ते। जीवों के समष्टि सू०श० मेरे सूक्ष्म शरीर में जुड़े हुए हैं उसका नाम है **हिरण्यगर्भ** तथा जीवों का जो अज्ञान रूपी कारण शरीर है वह समष्टि अज्ञान (कारण शरीर) मेरा एक कारण शरीर है **अव्याकृत** तो विराट-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत कहने से सभी जीवों के स्थू०-सू०-का० शरीर मेरे ही शरीर में आ जाते हैं वे अलग से नहीं रहे। इस प्रकार जीवों के और मुझ ईश्वर के तीन तीन शरीर हैं परन्तु जीवात्मा और परमात्मा अपने शरीरों से अलग है क्योंकि शरीरों को ज्ञान नहीं है ये एक मकान के समान हैं और जीवात्मा-परमात्मा का स्वरूप ज्ञानवान है। अर्जुन ! तुम भी अपने इनों शरीरों को जानते हो पर ये तुम्हें नहीं जानते ऐसे ही मैं समष्टि इनों शरीरों को जानता हूँ तीनों शरीर मुझको नहीं जानते। व्यष्टि-समष्टि शरीरों में रह करके मैं ही क्रमशः	भाग ४

						जीवात्मा-परमात्मा कहलाता हूँ। शरीर के भीतर रहने से मुझे ही जीवात्मा कहते हैं और बाहर परिपूर्ण होने से परमात्मा कहते हैं इसलिये जीवात्मा-परमात्मा में भेद नहीं है जैसे घटाकाश-महाकाश अभेद हैं व आकाश अखण्ड है। अर्जुन ! ये शरीर मेरी माया से बन जाते हैं पर इनों शरीरों से अलग हमारा तुम्हारा स्वरूप जीवात्मा-परमात्मा एक ही है। इन्हीं ३ शरीरों के अन्तर्गत् ३ अवस्थायें भी आजाती हैं। जागृत में सब स्थू०श० दिखाई पड़ते हैं, दूसरी स्वप्न अवस्था में सू०श० दिखाई पड़ते हैं तथा सुषुप्ति को कारण शरीर कहते हैं। जा०-स्व० का संसार सुषुप्ति से ही निकलता है और पुनः सुषुप्ति में लीन हो जाता है इसलिये सुषुप्ति कारण शरीर कहलाती है। इस प्रकार जा०-स्व०-सु० कहो या स्थू०-सू०-का० कहो एक ही बात है - इतनी ही माया है, इनको देखने वाला द्रष्टा-साक्षी ब्रह्म है वही ब्रह्म हमारा तुम्हारा स्वरूप है। जो अपने स्वरूप को जानता है वह सब बन्धनों से मुक्त है ।।	
55	55 May	47				**तैत्रीय उ० :: सृष्टिक्रम ::** सृष्टि के आदि में भगवान ही एक अकेले थे। उस परम्ब्रह्म परमात्मा से अथवा हमारी तुम्हारी आत्मा से सबसे पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से → अग्नि, अग्नि से → जल, जल से → पृथ्वी, पृथ्वी से → औषधियाँ, औषधियों से → अन्न, अन्न से → वीर्य → स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी आदि। दूसरी श्रुति यही कहती है कि अन्न से ही सब भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न को खाकर जीते हैं फिर अन्त में अन्नरूप पृथ्वी में ही लय हो जाते हैं **वीर्य अन्न की ७तवीं धातु है =** रस - रक्त - मॉस - मेदा - अस्थि - मज्जा - शुक्र ।। इस सातवीं धातु को तेजोमय होने से **शुक्र** तथा बल प्रदाता होने से **वीर्य** एवं सन्तानोत्पत्ति का क्षमतावान होने से **वीज** भी कहते हैं स्थूल + सूक्ष्म + कारण शरीर संरचना का सविस्तार वर्णन अपने स्वरूप के अज्ञान को कारण शरीर कहते हैं अतः इस कारण देह यानि स्वरूप अज्ञान के नाश के लिये **आत्म-ज्ञान** अनिवार्य है, जब अपनी आत्मा को आप पहचानोगे तभी अज्ञान का नाश होगा, तब आप जानोगे कि हम सच्चिदानंद आत्मा हैं। हमारी उत्पत्ति नहीं होती, आत्मा से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी उत्पन्न होते हैं और इन पंचभूतों से स्थूल और सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होते हैं। तो इन तीन शरीरों से भिन्न हमारा स्वरूप ४था आत्मा है। हम तीनों शरीरों को जानते हैं पर ये शरीर हमें नहीं जानते अतः हमारा द्रष्टा स्वरूप स्वयं सिद्ध है। तीनों शरीरों को ज्ञान नहीं है और हम ज्ञानवान हैं। इनों शरीरों में हम रहते है, इनों को हम जानते हैं पर इनों शरीरों से हम पृथक हैं क्योंकि सबसे पहले एक हम ही थे सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा या परमात्मा। आत्मा की उत्पत्ति नहीं है और ये सब आत्मा से उत्पन्न होते हैं, आत्मा में रहते हैं फिर आत्मा में ही लीन हो जायेंगे, हमारा-तुम्हारा स्वरूप आत्मा ज्यों का त्यों रह जायेगा	
		00				प्रवचन अनुपलब्ध	NA
	00 May						